I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

जनवरी-फरवरी 2026 * वर्ष 42 - अंक 1

77वें गणतंत्र दिवस एवं वन्दे मातरम् के 150 वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं

भगिनी निवेदिता द्वारा 1904 में तैयार ध्वज जिसे कांग्रेस के 1906 अधिवेशन में फहराया गया

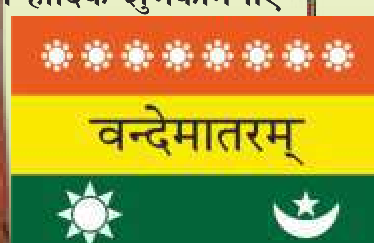

1907 में मैडम कामा द्वारा बनाया ध्वज

अशोक स्तंभ, सारनाथ

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

भारत के अद्‌भुत शिल्प

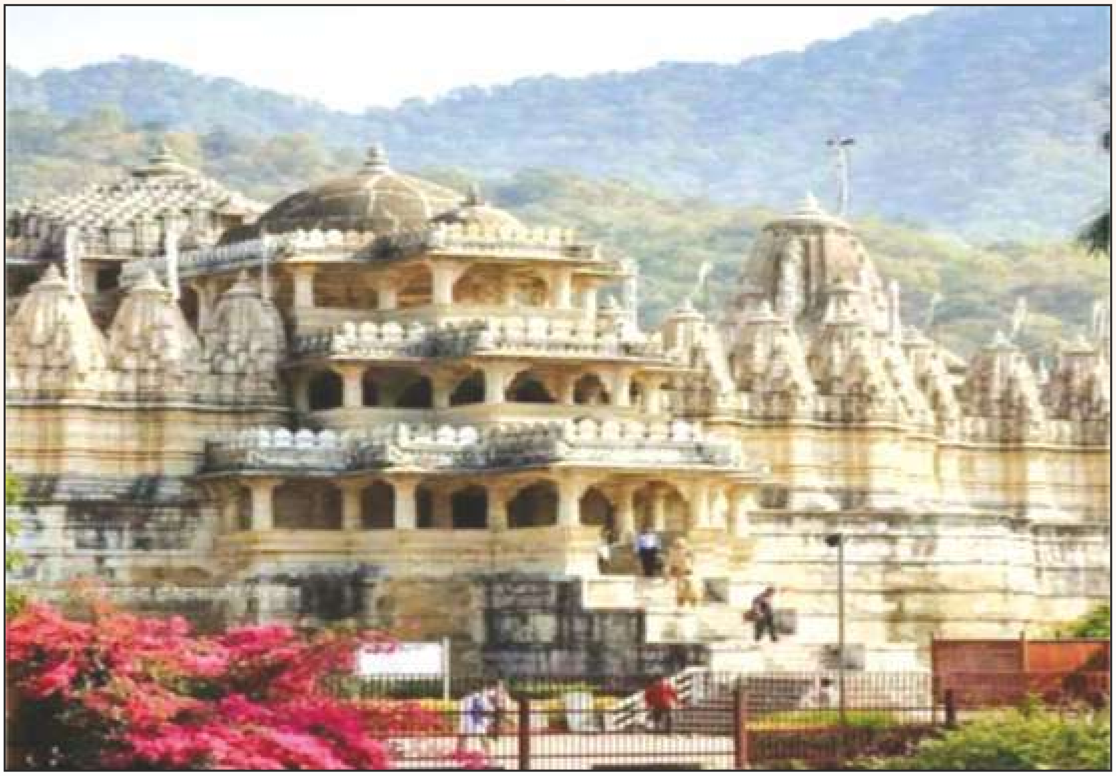

राणकपुर जैन मंदिर (पाली, राजस्थान)

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

ISSN 0975-6531

वैचारिकी

वर्ष : 42 अंक : 1

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

जनवरी-फरवरी, 2026 ✷ पौष शुक्ल 13, - फाल्गुन शुक्ल 12, वि. सं. 2082

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700 087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com
Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

द्वैवार्षिक 1500/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. :
32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch : New Market
IFSC Code No. :
SBIN0004662

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 6
- **दादूपंथ के पंचवाणी संग्रहों के कांन्हां-कांन्हइयां-कांन्हड़िया**
  ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल 9
- **तार सप्तक : पुनर्मूल्यांकन**
  राकेश भारतीय 19
- **मोहन राकेश की कहानियों में मध्यवर्गीय चेतना**
  डॉ. वासुदेवन 'शेष' 28
- **ममता कालिया की कहानियों में सामाजिक-राजनीतिक सरोकार**
  कनकलता कुमारी 33
- **माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य साधना**
  राजेन्द्र परदेसी 38
- **समकालीन मलयाली सिनेमा के सामजिक आयाम**
  प्रो. मधु वासुदेवन 42
- **राजस्थान के बिश्नोई सम्प्रदाय में अहिंसात्मक तत्त्व**
  डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़ 48
- **गुरुवाणी में कृष्ण**
  डॉ. प्रिया सूफी 55
- **भोजपुरी लोकनाट्य 'बाँसुरी' : एक अध्ययन**
  कुमार गौरव मिश्रा 57
- **हरिहर रूप का रहस्य**
  डॉ. आनन्द शर्मा 61
- **कोटा के प्राचीन कंसुवा शिव मन्दिर का शिल्प**
  ललित शर्मा 65
- **न्याय-वैशेषिक सिद्धांतों में धर्म का स्थान**
  डॉ. सुप्रिय राय 70
- **मारवाड़ में नाथ सम्प्रदाय का राजनीतिक वर्चस्व**
  डॉ. निशा भारद्वाज 74
- **फीरोजाबाद जनपद के स्वतन्त्रता संघर्ष की अविश्रुत गाथाएँ**
  डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' 82
- **भारतीय संस्कृति में वैविध्य एवं ऐक्य: एक समन्वयात्मक विश्लेषण**
  डॉ. राहुल कुमार मौर्य 89
- **पाठक-मंच** (सांस्कृतिक पर्व-मकर संक्रांति-पोंगल, डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन) 94

■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

सप्तसिंधु के सप्तशील

'रोटी, कपड़ा और मकान' को पारंपरिक रूप से जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के रूप में देखा जाता है। आज़ादी के बाद से ही भारत में इन अनिवार्यताओं को सुलभ करवाने के प्रयास किये जाते रहे हैं। रोटी, कपड़ा और मकान का नारा 1960 के दशक के उत्तरार्ध में भारत की राजनीतिक शब्दावली में शामिल हुआ और 1971 के आम चुनावों के दौरान इसे राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली। स्वतंत्रता के बाद सरकार की कल्याणकारी नीति बुनियादी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर केंद्रित थी, न कि केवल आर्थिक विकास पर। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) में भोजन का अधिकार भी शामिल है। हरित क्रांति के पश्चात भारत ने कृषि उत्पादन और खाद्यान्न की उपलब्धता में उल्लेखनीय प्रगति की है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत रियायती दरों पर अनाज और प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के माध्यम से करोड़ों परिवारों को मुफ्त राशन उपलब्ध कराया जा रहा है।

कपड़ा व्यक्ति की दैनिक आवश्यकता और सामाजिक मर्यादा का प्रतीक है। यह हमारी आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय पहचान का प्रश्न भी है। ग्रामीण विकास योजनाओं और आजीविका मिशनों के माध्यम से आय के साधन बढ़ाकर कपड़ों जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता विकसित की जा रही है। मकान को केवल छत नहीं, बल्कि परिवार के लिए एक सुरक्षित वातावरण माना गया है। वर्तमान में प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत इस दिशा में ठोस कार्य किया जा रहा है। तीव्र शहरीकरण ने मकानों की उपलब्धता तो बढ़ाई है पर पर्यावरण की अनदेखी की कीमत पर। तथापि भोजन, वस्त्र और आवास की इन अनिवार्यताओं को सुलभ करवाये बिना देश के विकास की रूपरेखा तय करना सम्भव नहीं है। भारत में रोटी, कपड़ा और मकान अब केवल बुनियादी जरूरतें नहीं, बल्कि सरकारी योजनाओं के माध्यम से सामाजिक सुरक्षा के प्रमुख अवसर बन गए हैं।

उपर्युक्त अनिवार्यताओं के साथ-साथ आधुनिक समय में 'शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा' को भी इसी श्रेणी में शामिल कर प्राथमिकता दी जा रही है। भारतीय संविधान और सरकारी योजनाओं के माध्यम से इन बुनियादी स्तंभों को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अवसर और प्राथमिकताएं प्रदान की गई हैं।

रोटी, कपड़ा और मकान के बाद साक्षरता, शिक्षा और तकनीकी कौशल को देश की अगली प्राथमिक आवश्यकता माना गया है। समग्र शिक्षा अभियान और 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' जैसी पहलें शिक्षा की सुलभता सुनिश्चित करती हैं। जन-स्वास्थ्य और आरोग्य की दिशा में देश के योजनाकारों और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीतियों का प्रमुख लक्ष्य 'सभी के लिए स्वास्थ्य' सुनिश्चित करना है। 'आयुष्मान भारत योजना' दुनिया की सबसे बड़ी स्वास्थ्य बीमा योजना है, जो गरीबों को मुफ्त इलाज की सुविधा देती है। जन-सामान्य को सामाजिक सुरक्षा के साथ-साथ आर्थिक सुरक्षा उपलब्ध करवाने के लिए 'प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना' तथा 'अटल पेंशन योजना' देश के नागरिकों को भविष्य की अनिश्चितताओं से सुरक्षित करती हैं।

पर ये सभी व्यक्तिगत सुरक्षा योजनाएं एक सबल सुरक्षित देश में ही कारगर हो सकती हैं। अतः देश की सुरक्षा का प्रश्न हमारी बुनियादी चिंता का विषय होना चाहिए। क्या हमारा समाज एकजुट होकर इस चुनौती का सामना करने को तैयार है? क्या देश के नागरिक के रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा और संरक्षा हमारी चिंता और हमारी चेतना का हिस्सा है? देश के विभिन्न इलाकों और कुछ वर्गों में विभेद की राजनीति ने हमारी एकता को चोटिल किया है। बीच-बीच में ऐसे विभाजनकारी स्वर सुनाई देते हैं जो देश की एकता और अखण्डता के लिए खतरा बन कर उभरते हैं। भारत आज विश्वपटल पर एक समर्थ राष्ट्र के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करवा रहा है। संसार में उसकी पहचान उसकी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और उदात्त जीवनमूल्यों के साथ-साथ उसकी आर्थिक और सामरिक शक्ति की वजह से भी है। यदि बृहत्तर भारतीय समाज एकजुट होकर नये उभरते अवसरों का लाभ उठा सके तो यह देश दुनिया का सबसे बड़ा आर्थिक केंद्र बन सकता है।

अतः आवश्यक है कि हम सामूहिक रूप से संकल्पबद्ध होकर देश के विकास के लिए अपने को समर्पित करें। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के अपने मूलभूत लक्ष्य के साथ-साथ भारतीय विद्या मंदिर ने इस दिशा में भी अपनी योजनाओं को निर्देशित किया है। इसके अंतर्गत देश के अग्रणी वैज्ञानिक संस्थानों के वैज्ञानिकों को आमंत्रित करके समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों तथा उद्यमियों और उद्योगपतियों से उनके सम्पर्क और अंतक्रिया हेतु 'साइंस सोसाइटी सिम्बायसिस' कार्यक्रमों का आयोजन नियमित रूप से किया जा रहा है।

कोई राष्ट्र तभी शक्तिशाली होता है जब अंतिम पंक्ति में खड़ा व्यक्ति भी सम्मान से जी सके। आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा का आधार है आर्थिक आत्मनिर्भरता। भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गईं 'पीएम स्वनिधि' जैसी योजनाएं अल्प आयवर्ग के रेहड़ी-पटरी वालों को आत्मनिर्भर बनाती हैं। पर यह कार्य केवल सरकार के बस का नहीं है। प्रत्येक समाज-सचेतन देशवासी को इसमें अपना योगदान देना है। चूंकि गरिमापूर्ण जीवन की बुनियाद आर्थिक आत्मनिर्भरता है और आर्थिक आत्मनिर्भरता कौशल और दक्षता के बिना सम्भव नहीं, अतः भारतीय विद्या मंदिर अपने विभिन्न स्किल डिपेलपमेंट प्रोग्राम्स - कौशल विकास कार्यक्रमों के द्वारा युवाओं के कौशल विकास तथा सशक्तीकरण के प्रभावकारी कार्य में लगा हुआ है।

इसलिए 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' के स्वप्न को साकार करने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान तथा स्वास्थ्य, शिक्षा और सुरक्षा की इन दोनों 'त्रयी' के साथ-साथ व्यक्ति की गरिमा और सम्मान का बिंदु भी

महत्वपूर्ण हो उठता है जिसका आधार है दक्षता विकास !

इन सब लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक है : आत्मबोध। हम क्या हैं? कहां पर खड़े हैं? हमारी सामर्थ्य क्या है? भारतीय वाङ्मय में स्पष्ट कहा गया है : आत्मानं विजानीहि। अतः हम कहां हैं? हमारा गंतव्य या उद्देश्य क्या है? हमारी शक्ति या सामर्थ्य क्या है? हमारा मार्ग क्या होगा? यह तय करना आवश्यक है। मार्ग तय करते समय जो बाधाएं आ सकती हैं, जो शत्रु हैं और जो मित्र हैं उनका सम्यक बोध भी हमें होना चाहिए। अतः आत्मबोध और गंतव्यबोध के साथ मार्गबोध और सामर्थ्यबोध पर विचार भी अत्यावश्यक है। हमें एक होकर - एकत्वबोध के साथ - विचार करना है, क्योंकि संघे शक्तिः कलौ युगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारे प्रबुद्ध गण शुद्ध भाव से इन विषयों पर चिंतन कर हमारे प्रारब्ध के निर्माण की दिशा में अग्रसर होंगे।

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

प्रतिस्वर

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी 'वैचारिकी' (भाग-41, अंक-5) प्राप्त हुई। यह केवल एक पत्रिका नहीं, अपितु भारतीय ज्ञान-परंपरा का सजीव स्पंदन है, जो हृदय और बुद्धि दोनों को समान रूप से स्पर्श करता है। इस अंक की प्रत्येक रचना में गंभीर शोध, सांस्कृतिक प्रतिबद्धता और साहित्यिक गरिमा का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। इसे पढ़ते समय बारबार यह अनुभव हुआ कि हमारी समृद्ध परंपरा आज भी उतनी ही प्रासंगिक और प्रेरणा स्त्रोत है। सच कहूँ तो इसकी सामग्री का आकर्षण ऐसा है कि पाठक स्वयं को उससे अलग नहीं रख पाता। आपके कुशल नेतृत्व में 'वैचारिकी' का यह सतत् प्रकाशन निश्चय ही एक साधना है। इसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं। सादर व सधन्यवाद ।

कुंज बिहारी अग्रवाल
मेट्रो टॉवर, 1, हो ची मिन्ह सरणी,
कोलकाता-700071
मो. 9830079113

संपादकीय

गत नववर्षों की तरह इस नववर्ष 2026 की भी हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई, बधाई इसलिए कि हम इस नववर्ष में आ सके। शुभ की कामना, तात्पर्य कि हम सबका शुभ हो, बुरा न हो, इस वर्ष में हम खुशहाल रहें। हालांकि अकेली शुभता नहीं होती, अशुभता भी होती है, तभी तो शुभता समझ पड़ती है, दुख के बिना सुख अनुभव में नहीं आता। परंतु शुभता की ही कामना की जा सकती है, अशुभता की नहीं, यद्यपि अशुभता की कामनाएं भी की जाती हैं। तो, नववर्ष में पुनः हार्दिक शुभकामनाएं। वैसे, काल में स्थान है जिस पर प्रकृति है, सृष्टि है। प्रकृति और मनुष्य द्वारा निर्मित परिस्थितियों के कारण काल प्रवहमान या घटित होता अनुभव होता है, उसमें भूत-वर्तमान-भविष्य-वर्ष आदि जैसा कुछ नहीं होता, वह तो निरंतर है। मनुष्य ने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए कुछ अवधारणाएं बनाली कि गतवर्ष, नववर्ष, आगत वर्ष आदि।

देखें तो नववर्ष में एकदम नया कुछ नहीं होता, गत वर्षों के दाय होते हैं जिनमें कुछ और परिस्थितियां भी जुड़ जाती हैं या कुछ घट जाती है। यह नववर्ष 2026 भी गत नववर्षों का दाय लिए हुए है। गत वर्षों से मनुष्यता संहारक त्रासदी से भयभीत है। वे संहारक अस्त्र देखने-सुनने में आ रहे हैं जिनके बारे में कभी सुना नहीं था (रामायण-महाभारत के अस्त्र-शस्त्र याद आते हैं), विडम्बना यह है कि जिनका आविष्कार वैज्ञानिक प्रगति बताई जा रही है। वैसे मनुष्य की कथित प्रगति का आरम्भ मृत्यु अर्थात हत्या के लिए अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कारों से ही हुआ, फिर सुविधा भी जुड़ गई। वैसे वैज्ञानिक प्रगति और प्रकृति-प्राणियों के बीच स्थाई दुश्मनी है, विकास चाहे अंततः विनाश है, परन्तु मजबूरी भी है। मनुष्य में परस्पर युद्ध स्थाई प्रवृत्ति है। युद्ध की चपेट से शेष बचे मनुष्य युद्धों के विवरणों और उनके परिणामों से इतिहास लिखते हैं, साहित्य रचते हैं, गाथाएं सुनाते हैं। श्रीकृष्ण जानते थे कि युद्ध अवश्यंभावी है, इसीलिए कहा-- अर्जुन ! उठ, युद्ध कर, युद्ध में वीरता दिखाने से कीर्ति होती है, बच गए तो धरती पर ऐश करोगे, मर गए (जिसे वीरगति प्राप्त होना या शहीद होना कहा जाता है) तो स्वर्ग (जो पता नहीं कहां है और जहां सिर्फ मर कर ही जाया जा सकता है) में ऐश करोगे। इस स्वर्ग या जन्नत में ऐश करने के लिए जिहाद (धर्मयुद्ध) में लगे हैं मुस्लिम आतंकी, निर्दोष गैर मुस्लिमों का कत्ल कर 'शबाब' हासिल करने में लगे हैं। कत्ल में जितनी क्रूरता उतना ही 'शबाब' और उस पर यह धर्म-मजहब ?

उदारमना हिन्दू संस्कृति भी मजबूरन 'हिन्दू धर्म' होकर आत्मारक्षार्थ संगठित होकर कट्टर हिन्दुत्व की ओर अग्रसर है। ब्रिटेन में नया धार्मिक आंदोलन उभर रहा है। इसे 'क्रिश्चियन नेशनलिज्म' यानी 'ईसाई राष्ट्रवाद' कहा जा रहा है। दावा है कि ब्रिटेन को फिर से 'ईसाई संस्कृति' में लौटना चाहिए। इसमें ईसाई प्रतीक अब प्रेम और करुणा नहीं बल्कि आक्रोश, कट्टरता और राष्ट्रवाद का प्रतीक बनते दिख रहे हैं। इसे मिलिटेंट क्रिश्चियनिटी भी कहा जा रहा है। ईसाइयत के इस नए रूप का चेहरा हैं बिशप सेरियन ड्यूअर जो समुद्र किनारे खुले आसमान में सामूहिक बपतिस्मा (ईसाई बनाने के लिए संस्कार) कराते हैं। उनके समर्थक सोशल मीडिया के जरिए जुटते हैं। यह नया धर्म- आंदोलन चर्चों से नहीं, बल्कि इंटरनेट से निकल रहा है। ब्रिटेन में 'यूनाइट द किंगडम' जैसी रैलियों में हजारों लोग ब्रिटिश झंडे और क्रॉस लेकर निकलते हैं। इनके बैनर पर लिखा होता है-- 'इस्लाम ब्रिटेन में नहीं होना चाहिए।' यूके इंडिपेंस पार्टी ने घोषणा-पत्र में लिखा है- 'कट्टर इस्लाम पर युद्ध छेड़ेंगे। ईसाई धर्म को सरकार के केंद्र में लाएंगे।' वे 'जीसस इज किंग', 'यूनाइट द किंगडम' जैसे नारों वाले कपड़े पहनते हैं। ड्यूअर टॉमी रॉबिन्सन जैसे विवादित नेताओं के साथ मंच साझा करते हैं। ये लोग इस्लाम और अप्रवासियों के खिलाफ बात करते हैं। विशेषज्ञ डॉ. मारिया पावर कहती हैं, 'अमेरिका में जो क्रिश्चियन नेशनलिज्म पनपा, उसका असर अब ब्रिटेन में दिखने लगा है। धर्म या मजहब तो मनुष्य में श्रेष्ठता उत्पन्न करने के लिए होता है। जर-जमीन-जोरू के लालच में युद्ध कहा जाता रहा है, अब उसमें धर्म भी जुड़ गया है। और धार्मिक कट्टरता के कारण हुए युद्धों में सर्वाधिक नरसंहार हुआ।

अमेरिका-ईरान में ठनी है, पश्चिम एशिया धधक रहा है। एशिया में चीन और पाकिस्तान युद्ध भड़काने के प्रयासों में लगे रहते हैं। गत चार वर्षों से रूस-यूक्रेन का युद्ध चल ही रहा है जिसमें पूरा यूरोप उलझा हुआ है, मानवता विश्वयुद्ध की आशंका से सांस रोके है, चारों ओर मृत्यु का तांडव मचा है। इस तांडव में, मानवता-लोकतंत्र-न्याय की बातें उच्च स्वर में करने वाला अमेरिका अपना हित, अपना लालच साधने में लगा हुआ है। प्रसिद्ध लेखक मिन्हाज मर्चेंट लिखते हैं कि इतिहास में किसी और देश ने इतने युद्ध नहीं लड़े, इतने संप्रभु राष्ट्रों पर धावा नहीं बोला, इतने निर्वाचित नेताओं का कत्ल नहीं करवाया और इतनी सरकारों का तख्ता नहीं पलटा जितने अमेरिका ने किया है। अमेरिका न किसी का स्थायी मित्र है, न ही स्थायी शत्रु, वह सिर्फ और सिर्फ खुद का है। फ्रांस ने 18वीं सदी में ब्रिट्रेन से आजादी की लड़ाई में अमेरिका का साथ दिया, परन्तु उससे भी दगा करने में संकोच नहीं किया और आस्ट्रेलिया द्वारा फ्रांस से 60 अरब डॉलर की परमाणु शक्ति सम्पन्न पनडुब्बियां खरीदने का करार रातों रात रद्द करवा दिया। 2008 में भारत-अमेरिका एटमी डील से दोनों देशों के संबंधों का नया अध्याय प्रारंभ हुआ। तथापि अमेरिका का भू-राजनीतिक पाखंड है कि वह पाकिस्तान को घातक हथियारों की सप्लाई इस नाम पर करता है कि पाकिस्तान को अंदरूनी आतंकवाद से लड़ने के लिए इनकी जरूरत है। जबकि अमेरिका जानता है कि इन हथियारों का प्रयोग पाकिस्तान भारत के विरुद्ध करता है। वस्तुतः अमेरिका को सारी धरती का धन चाहिए, वह हर देश से यह चाहता है कि वह उसका सहयोगी बने, परन्तु वह आगे नहीं बढ़े। कल्पना करें कि राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प यदि भारत को अमेरिकी टेक्नोलॉजी जैसे गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, इंस्टाग्राम, फेसबुक, एक्स या चैटजीपीटी के इस्तेमाल से रोक दें तो क्या होगा? सब कुछ ठप हो जायेगा।

अरब देश अमेरिका के सहयोगी बने हुए हैं। परन्तु ईरान ने ऐसा नहीं किया तो अब उसे मिटा देने पर उतारू है अमेरिका। रूस-यूक्रेन का युद्ध चल ही रहा है। चीन ताईवान को दबोचने की कोशिशों में लगा है। लालच, अहंकार और धार्मिक कट्टरताओं के चलते अब तीसरे विश्वयुद्ध के आसार बने हुए हैं। 'वीटो' के स्वार्थांध प्रयोग से प्रभावहीन बन चुके संयुक्त राष्ट्रसंघ से कोई उम्मीद नहीं है। देखते हैं, नया साल 2026 कैसा

रहता है ! तथापि नववर्ष की शुभकामनाएं ...

... क्योंकि लालच, अहंकार, संकीर्णताओं, मृत्यु के तांडव के बीच में जीवन भी स्पंदित है। यह स्पंदन युक्रेन से आई एक रिपोर्ट से अनुभव हो रहा है जिससे पता चला कि गत चार वर्षों से युक्रेन में चल रहे युद्ध के बीच में भी थियेटर चल रहा है। कलाकार नाटक मंचित करते हैं, बम गिरने लगते हैं तो बंकर में चले जाते हैं, टिकट बिक्री से इकट्ठे रुपये सैनिकों के परिवारों को देते हैं, जीवन को बचाये रखने की कामना करते रहते हैं। याद आती है रूसी कहानी 'कैंसरवार्ड' जिसमें लाइलाज बीमारी भोग रहे मरीज का बैड वार्ड की एकमात्र खिड़की के पास है। जिससे बाहर देखते हुए वह दूसरे मरीजों को सुनाता रहता है कि खिड़की के बाहर एक सुन्दर बगीचा है, नीम का वृक्ष है, जिसपर रंग-बिरंगे पक्षी आकर डाल-डाल फुदकते हैं। वृक्ष की डालियां सखियों की तरह बतियाती चहकती रहती हैं। कुछ समय के बाद उस मरीज का देहांत हो जाता है तो दूसरे मरीज को वह बैड मिल जाता है तो वह देखता है कि खिड़की के बाहर तो एक दीवार है। पहले मरीज द्वारा बताये गये काल्पनिक विवरण को याद कर वह मरीज जैसे जी उठा। ओ हेनरी की कहानी 'लास्ट लिफ' में वार्ड में भर्ती बीमार किशोरी के बैड के पास की खिड़की के बाहर एक वृक्ष है, जिसे वह निरंतर देखते रहती है। पतझड़ में उसके पत्ते गिरने लगते हैं तब वह किशोरी सोचने लगती है कि इस पेड़ के सब पत्ते गिरने के साथ ही मेरी मृत्यु हो जायेगी। वह अपनी इस धारणा को अपने मुहल्ले के बूढ़े पेंटर को बताती है। पेंटर पत्तों को गिरना देखता रहता है। आखिरी पत्ता गिरने को होता है तो वह पेंटर गुपचुप एक प्लास्टिक का पत्ता बनाकर उस पेड़ से बांध देता है। रात को तूफानी हवाएं चलती है जिससे पेड़ के सब पत्ते गिर जाते हैं, परन्तु लड़की देखती है कि पेड़ पर अभी भी एक पत्ता है। वह जीवन जीने के उत्साह से भर उठती है।

राजस्थान में जालौर के एक अस्पताल में 27 वर्षीय लड़की पीहू कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी से जूझ रही थी। उसको लग गया था कि उसका अंतिम समय आ गया है। आज उसका जन्म दिन है। अचानक उसने अपने पिता से कहकर केक मंगवाया जिस पर लिखवाया पीहू- लक्की। आईसीयू को सजाया गया, हैप्पी बर्थ-डे गाया गया। चेहरे पर मुस्कान लिए हुए पीहू दुनिया से चली गयी। ग्रैमी नॉमिनेटेड गायिका अच्युत गोपी को विवेकानंद ग्लोबल यूनिवर्सिटी में अपने 'चल मन वृंदावन' कॉन्सर्ट में अपने पिता के निधन की सूचना मिली। परन्तु उसने संगीत को रुकने नहीं दिया और अपने पिता को समर्पित करते हुए गाया--'वांछा-कल्पतरुभ्यश्च कृपा-सिंधुभ्य एव च। पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।। श्री श्री राधा गोविंद देव, राधा गोविंद देव, राधा.... भज मन राधे...'। गला रूंधा हुआ था, परन्तु जीवन गुनगुना रहा था। शिवमंगल सिंह सुमन की पंक्तियां हैं--

आज सिंधु ने विष उगला है, लहरों का यौवन मचला है।
आज हृदय में और सिंधु में, साथ उठा है ज्वार।
तूफानों की ओर घुमा दो नाविक निज पतवार।
सागर की अपनी क्षमता है, पर मांझी भी कब थकता है।
जब तक सांसों में स्पंदन है, उसका हाथ नहीं रुकता है।
इसके ही बल पर कर डाले सातों सागर पार।
तूफानों कि ओर घुमा दो नाविक निज पतवार।

नववर्ष 2026 में भी ये जीवन-संगीत के स्वर गूंजते रहें, यही कामना है, आओ लालच, संकीर्णताओं, कट्टरताओं के विरुद्ध और मानवता के लिए संगठित हों !

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

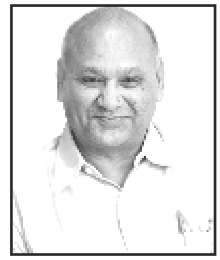

दादूपंथ के पंचवाणी संग्रहों के कांन्हां-कांन्हड्यां-कांन्हड़िया

ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल

दादूधाम, नरायना के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीकरण करते समय अनेक पंचवाणी-संग्रह[1] पुस्तकों में संत कांन्हां की रचनाएँ भी देखने को मिलीं। एक पुस्तक जिसका क्रमांक 496 है, उसके पृष्ठ 272 पर शीर्षक है 'कांन्हड़िया रावळजी का पद' और पृष्ठ 274 पर शीर्षक है 'कांन्हां चारणजी कौ पद'। इन दो भिन्न-भिन्न शीर्षकों को देखकर मन में यह प्रश्न उठा कि क्या उक्त शीर्षकों के कांन्हां व कांन्हड़िया और अन्य पंचवाणी-संग्रहों में उपलब्ध कांन्हां के नाम पर उपलब्ध रचनाएँ एक ही रचनाकार की हैं अथवा ये सभी रचनाकार अलग-अलग हैं। प्रसिद्ध संत जांभोजी के शिष्यों में भी एक शिष्य का नाम कांन्हां चारण मिलता है। क्या इस चारण कांन्हां का साम्य उक्त किसी कांन्हां से है? यह प्रश्न भी बार-बार मस्तिष्क में घूमने लगा। साम्य और वैषम्य स्थापित करना उतना आसान नहीं है, जितना सोचा जा सकता है। इसके लिए रचनाकारों की रचनाओं और उनमें प्रयुक्त भाषा, उनकी विषयवस्तु और रचनाकार के बारे में उपलब्ध लिखित, मौखिक इतिवृत्तात्मक संकेत वे महत्त्वपूर्ण सूत्र होते हैं, जिनके आधार पर किसी संभावित अथवा निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

कांन्हां, कांन्हइया, कांन्हड़िया आदि के नाम से उपलब्ध रचनाओं को दादूधाम, नरायना की आठ प्रतियों[2] से फोटोकॉपी कराके प्राप्त किया गया। राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर शाखा की दो प्रतियों[3] से भी इनकी रचनाओं की श्याम-श्वेत छायाप्रति प्राप्त की गई। मेरे निजी संग्रह की एक प्रति[4] में उपलब्ध रचनाओं को भी देखा-विचारा गया। वि.सं. 1684 में दादूजी के पौत्र शिष्य और संतदासजी मारु के शिष्य गोपालदासजी द्वारा संकलित-सम्पादित 'सरबंगी-सरह-चिंतामणि'[5] ग्रंथ में भी इनकी उपलब्ध रचनाओं को देखा-परखा गया। इसके अतिरिक्त वि.सं. 1660 से 1670 के मध्य श्रीरज्जबजी द्वारा संकलित-सम्पादित सरबंगी ग्रंथ[6] में भी इनकी रचनाओं को देखा गया। इन सभी तेरह स्रोतों से सामग्री संकलित करने पर ज्ञात हुआ कि 'सरबंगी-सरह-चिंतामणि' में संकलित ग्यारह पदों में से छः पद कांन्हां छाप के, दो छंद कांन्हइया छाप के तथा तीन पद कांन्हड़िया छाप के हैं। कांन्हां छाप के पदों की भाषा में जहाँ ब्रजी का प्राधान्य है, वहाँ कांन्हड़िया की भाषा गुजराती मिश्रित चारणी है और कांन्हइया छाप के पदों की भाषा ठेठ मारवाड़ी चारणी है। इन पर गंभीर विचार करने के लिए हमने कांन्हां, कांन्हइया, कांन्हड़िया आदि के बारे में जब जानकारी जुटाना प्रारंभ किया तो हमें निम्न

जानकारियां मिलीं--

1. रतनू कांन्हां: इनका जन्म विणलियो (मारवाड़) ग्राम में करमसी के यहाँ हुआ। यह जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह (1678 ईस्वी-1728 ईस्वी) के समकालीन थे। इनकी एक कृति कवत चाम्पावत सींधला रा विणलोया वाला मिलती है। खेत के एक झगड़े में इन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वी गिरधारी को मार डाला था।[7]

2. आढ़ा कांन्हां : इनका जन्म सन् 1503 में बालेरी गाँव में हुआ था। यह बीकानेर के राव जैतसी के समकालीन बताए गए हैं। यह आढ़ा गौत्री चारण थे।[8] मुझे अभी तक इनकी रचनाओं के नमूने नहीं मिल पाये हैं।

3. मेहडू कांन्हां : ये ग्राम गूगड़ी, इलाका पारकर, दो कच्छ के मेहडू शाखा के अच्छे कवि थे।[9] ये जालंधरनाथजी के परमभक्त थे। इनके लिए चारण कवि सबळा लालस ने कहा है - 'कांन दलौ भीमौ सुकब, सबळी कियौ सनाथ। जालंधर अघ जारणा, नमो चारणानाथ'।[10] चारणों के स्वामी अघपुंजों को समूलतः नष्ट कर देने वाले जालंधरनाथजी को नमस्कार है, जिन्होंने सुकविगण कांन्हां मेहडू, आसिया दळा, आसिया भीमा और लालस सबळा को सनाथ किया। इन्होंने चारणी देवी बरवड़ी की स्तुति के छंद बनाए हैं, जिनमें से एक की टेक है-- 'टेक वळ अनवळ दियण नरही, वळां पूरणं बरवड़ी'। इनकी रचनाएँ वयणसगाई अलंकार युक्त हैं। इनका समय लेखक को अभी तक अज्ञात है। कहते हैं कि ये आजीवन गृहस्थाश्रम में रहते हुए भगवत् आराधना करते रहे।

4. मोतीसर कांन्हां : चारणों की विरुद-प्रशंसक मोतीसर जाति में ग्राम माड़वा, तहसील--पोकरण, जिला--जैसलमेर में डिंगल के एक सशक्त कवि कांन्हां नामधारी हुए हैं। इनका समय वि.सं. 1750 से 1850 के मध्य का माना जाता है। डॉ. शक्तिदान कविया का कथन है कि इनका समय वि.सं. 1750 से पूर्व का किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।[11] ये जालंधरनाथजी के भक्त थे, जिन्होंने इनको प्रत्यक्ष दर्शन दिये थे, ऐसी जनश्रुति है। भगवान् सूर्य ने इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर इनको प्रत्यक्ष दर्शन देकर दूध पीने को एक भैंस भी दी थी। इन्होंने भगवान् सूर्यदेव की स्तुति में 'सूरजदेव रा छंद' नामक कृति की रचना की है। इनकी अन्य कृतियों के नाम हैं : 'बीखड़ी रा छंद', जालंधरनाथजी रा छंद आदि-आदि। इनकी जितनी भी रचनाएँ हैं वे 'वयणसगाई' अलंकार युक्त हैं। राजस्थान के डिंगल कवियों में इनका स्थान काफी सम्मानजनक है।[12]

5. रावळ योगी कांन्हड़िया : दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 496 तथा राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर शाखा के ग्रंथांक 34 में इनके पांच पद उपलब्ध हैं। एक पद में इन्होंने अपने को 'योगी' तथा अन्य दूसरे पद में 'रावळ योगी' कहा है। इनकी भाषा पर गुजराती का प्रभाव है तथा विषय-सामग्री नाथमतानुसार है। ग्रंथांक 496 में इनकी रचनाओं के पूर्व शीर्षक 'श्रीकांन्हड़िया रावळजी का पद' है। अतः ये निश्चित ही गुजरात प्रान्त के निवासी तथा रावळ-सम्प्रदाय के योगी थे। जो मुस्लिम होकर भी नाथपंथ में दीक्षित होकर नाथपंथी संन्यासी बन जाते हैं, वे 'रावळ योगी' कहलाते हैं। 'सरबंगी-सरह-चिन्तामणि' में इनके तीन पदों का संकलन हुआ है, जबकि रज्जबजी की सरबंगी में इनका एक भी पद संकलित नहीं है।

6. बारहठ कांन्हिया : इनका गोत्र घूद[13] और निवास स्थान खुंड़िया था। इनका जन्म समय वि.सं. 1500 और निधन समय वि.सं. 1580 माना जाता है। इनके पिता बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीका के पोळपात थे, जिससे इन्हें बारह गाँवों की जागीर मिली हुई थी।[14] कांन्हिया डिंगल के अच्छे कवि थे, किन्तु निःसंतान होने से दुःखी रहते थे। प्रसिद्ध चारण भक्त कवि अल्लुजी के परामर्शानुसार ये विश्नोई-धर्म-प्रवर्तक जांभोजी के शिष्य होकर विश्नोई हो गए,

जिससे इनको संतान-सुख मिला बताते हैं। इन्होंने जांभोजी की स्तुति में एक जांगड़ो गीत व तैंतीस छंदों की एक बावनी का निर्माण किया है। अभी तक इनकी रचनाओं में एक जांगड़ो गीत, एक बावनी ग्रंथ, तीन कवित्त और एक हरजस मिले हैं।[15] डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने 'जाचै की जाचकां, जाच राजा जुगपत्ती' नामक कवित्त को मौखिक परंपरा का साक्ष्य देकर इनकी कृति के रूप में उल्लिखित किया है, किन्तु श्रीगिरधरदान रतनू[16] ने इस कवित्त को मोतीसर कांन्हां का माना है। चारण-साहित्य के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान डॉ. शक्तिदान कविया से पत्र व्यवहार करने पर ज्ञात हुआ कि उक्त कवित्त चारण विद्वानों में मोतीसर कांन्हां की कृति के रूप में ही प्रसिद्ध है जिसे बचपन में उनको भी उनके गुरु ने इसको मोतीसर कांन्हां की कृति के रूप में ही याद कराया था।[17] जब हम कवित्त की भाषा पर विचार करते हैं तब यह उस भाषा के समान मिलती है जैसी मोतीसर कांन्हां के पैतृक स्थान ग्राम-माड़वा, तहसील-पोकरण, जिला-जैसलमेर में बोली जाती है। वहाँ की बोली में 'क्या' का समानार्थक 'की' है जो इस कवित्त में द्रष्टव्य है। अतः भाषिक दृष्टि से भी इस कवित्त को बारहठ कांन्हिया का न माना जाकर मोतीसर कांन्हां का ही माना जाना उचित है।[18] बारहठ कांन्हिया डिंगल के अच्छे कवि थे। सरबंगी-सरह-चिंतामणि में कांन्हिया नाम के पाँच पदों में से एक कवित्त, एक बेलियो गीत तथा तीन पद हैं। तीनों पद बारहठ कांन्हिया के न होकर ग्रंथांक 496 व 34 के अनुसार रावळ शाखा के योगी कांन्हड़िया के हैं। डॉ. मोहनलाल जिज्ञासु ने बारहठ कांन्हिया की एक रचना[19] अपने ग्रंथ 'चारण-साहित्य का इतिहास' में उद्धृत की है। वह भी बेलियो जाति का ही गीत है और उसकी भाषा-शैली चारणी होने से निश्चय ही वह कांन्हिया बारहठ की रचना लगती है। इस गीत की विषय सामग्री भी ठीक वैसी ही है, जैसी विश्नोई संतों की हुआ करती है। यद्यपि डॉ. जिज्ञासु ने इनका वर्णन परवर्तीकालीन कवियों में किया है, तथापि उन्होंने इनके बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होना भी लिखा है।[20] उनको यदि उक्त तथ्य ज्ञात हो जाते तो वे कदापि इनका परवर्तीकालीन कवियों में वर्णन न करते। जांभोजी के भक्त होने से इनकी गणना चारण भक्त कवियों में होती है। राजस्थानी-संत-साहित्य-परिचय के लेखक संत नारायणदासजी ने इनके बारे में लिखा है-- 'ये रोहड़िया शाखा के बारहठ रॉंपड़ास के चाहड़जी के पुत्र थे। इनका जन्म विक्रम संवत् 1500 के लगभग हुआ था और देहान्त विक्रम संवत् 1580 के लगभग हुआ था। इनकी रचना 'बावनी तेतीसी' है (11 दोहे, 33 छंद, 1 कवित्त) फुटकर छंद (जांगड़ो गीत 1, कवित्त 3, हरजस 1)'।[21]

7. पंचवाणी--संग्रहों में उपलब्ध पद-साखियों के कर्त्ता लड़बावरा कांन्हां : दादूपंथीय-हस्तलिखित-ग्रंथों में जिन लड़बावरा कांन्हां की रचनाओं का संकलन ग्रंथांक 496 व 34 को छोड़कर अन्यों में हुआ है, के बारे में आज दादूपंथी संत, कथावाचक और मण्डलेश्वर कुछ भी बता पाने में असमर्थ हैं। तथापि विक्रम संवत् 1884 में दादूवाणी की परम्परागत कथा करने के लिए दादूपंथी संत चम्पारामजी ने 449 पद्यों का निर्माण किया था, उनमें से दोहा क्रमांक 8 में संत कांन्हां से सम्बद्ध संकेत आया है-- 'ज्यों गुरु दादू को मिले, त्यों नानक यदुराय। कांन्हों की गैबहि मिले, नृप रहुगण गुरु पाय।'[22] इस संकेत को स्पष्ट करते हुए संत नारायणदासजी ने लिखा है-- 'कांन्हां भक्त को भी अकस्मात् गुरुदेव की प्राप्ति हुई थी। उसे पता भी नहीं था कि आज गुरुदेव मिलेंगे, किन्तु अकस्मात् गुरु मिल गए और उपदेश देकर कांन्हां को कृत्य--कृत्य कर दिया था। कांन्हांजी, कांन्हां लाड़ला के नाम से प्रधान भक्त हुए हैं। कांन्हां भाना की सेवा करते थे किन्तु गुरु के उपदेश से प्रभावित होकर निरंतर भजन करने लगे थे और परमप्रेम से भजन करने के कारण भगवान को बहुत प्रिय होने से लोग उनको कांन्हां लाड़ला के नाम से पुकारने लगे थे।'[23]

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि पहले ये योगमार्गानुसार साधना किया करते थे, किन्तु अकस्मात् भगवत्स्वरूप गुरु के मिल जाने से इनकी प्रवृत्ति योगमार्ग से हटकर भगवन्नामजप की ओर हो गई थी और इसी कारण इनका नाम 'लड़बावरा कांन्हां' हो गया था। इन्होंने किसी मरणधर्मा शरीरधारी को उसी प्रकार गुरु नहीं बनाया था, जिस प्रकार महाराज दादूजी, नानकदेवजी ने नहीं बनाये थे। इनको गुरु का उपदेश तो मिला किन्तु वह अनायास मिला और जिससे उपदेश मिला, वे किस सम्प्रदाय विचारधारा के संत थे, इसका भी कोई निश्चय नहीं है। अस्तु! संत श्रीराघौदास ने अपने भक्तमाल में लड़बावरा कांन्हां के बारे में एक मनहर छंद लिखा है, जिसका मूल पाठ अग्रांकित प्रकार से है--

मसकत करत मगन मतवारौ भयौ नाम की लगन कीन्हीं कांन्हां लड़बावरौ।

एक निसा निकट निसंक रही बाई एक भोर भए सोर भयौ चोर है तू रावरों।।

ज्याब कौन्हौं जुलम जगतपति जानैं भेद भरि आए थन कांन्हां पीवै जैसै डावरौ।।

राघौ कहै परिचौ प्रचण्ड भयौ जान्यौ जब विनती करत सब गाँव दोस छावरी।।[24]

इसका सरलार्थ होगा-- 'भगवन्नाम में एक रात रुचि उत्पन्न करके लड़बावरा कांन्हां मसकत (परिश्रम युक्त कार्य करते हुए) भगवन्नाम में निमग्न होकर मतवाला हो गया था। एक रात्रि में एक स्त्री इनके यहां निःशंकभाव से रह गई थी। प्रातःकाल होने व गाँव वालों को ज्ञात होने पर उन्होंने इनसे कहा-- आप हमारे चोर हैं। आपने अज्ञात स्त्री को भोगने के लिए रात्रि में अकेली ही अपने यहाँ रख ली। इस मिथ्या आरोप के उत्तर में आपने कहा कि मैंने इस स्त्री को किस भावना से अपने यहाँ रहने दिया, यह आप न जानकर जगत्पति परमात्मा जानता है। इतना कहते-कहते ही उस स्त्री के स्तन दूध से परिपूर्ण हो गए और कांन्हां बालक बनकर उनमें से दूध पीने लगा। राघौदास कहता है-- जब उक्त महान् 'परचा' जगत् के सामने हुआ, तब सभी ने इनको परिपूर्णता से जाना कि ये परब्रह्म- परमात्मा को प्राप्त पूर्ण सिद्ध महात्मा हैं। इनमें कामवासना का लेश भी नहीं है। इनकी इस स्थिति को जानकर ही उक्त स्त्री रात्रि भर इनके यहाँ निःशंकभाव से रही। इनका उक्त 'परचा' देखकर सारा गाँव 'संत अवज्ञा' रूप अपने अपराध को इनसे माफ करने को प्रार्थना करने लगा।'

उक्त मनहर कवित्त में इनका नाम 'लड़बावरा कांन्हां' आया है। इनके कई पदों में भी इनका यही नाम आवृत्त हुआ है। यथा 'आप चीन्हि लड़बावरे कांन्हां।[25] जिसका तात्पर्य है-- हे लड़बावरे कांन्हां! सर्वप्रथम अपने आपको जान-पहचान कि तू वास्तव में है क्या? क्या तू शरीर है? यदि नहीं तो क्या आत्मा है? यदि हाँ, तो विनाशी को छोड़कर अविनाशी आत्मा को अपना असली स्वरूप समझकर सदैव उसी में रमण कर। 'बसै बसेरौ लड़बावरे कांन्हां'[26] अर्थात् लड़बावरे कांन्हां! तू दो संधियों के बीच निवास करता है, जहाँ न निरी अज्ञानता है और न पूर्णतः ज्ञान का साम्राज्य है। भक्तमाल में वर्णित उक्त घटना की पुष्टि आलोच्य कांन्हां ग्रंथावली के पदांक 104 से होती है 38, स्वात्मकचन से प्रबल प्रमाण और कुछ नहीं होता। अतः भक्तमाल की घटना सर्वथा सत्य और हमारे द्वारा आलोच्य कांन्हां से ही सम्बद्ध सिद्ध होती है।

उक्त चम्पारामजी के दृष्टान्त के दोहे, भक्तमाल के मनहर कवित्त और स्वयं साखी-पदकार संत कांन्हां के पदों में प्रयुक्त नाम 'लड़बावरा' के आधार पर यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि पंचवाणी-संग्रह-पुस्तकों में प्राप्त कांन्हां नाम के साखी व पद 'लड़बावरा' कांन्हां के ही हैं। जहाँ तक इनके इदमित्थम् से सम्बन्धित अन्य ज्ञातव्य विषयों का सवाल है, वहाँ हम कहना चाहेंगे कि हमने जिन-जिन से भी इनके बारे में जानकारी करनी चाही है, उन सभी ने इनके बारे में कुछ भी बताने में असमर्थता ही व्यक्त की है। लिखित

और परम्परागत कथनों को ऊपर लिखा जा चुका है, जिनके आधार पर इनका नाम 'लड़बावरा' कांन्हां निश्चित होता है, उक्त विवरणों से यह भी ज्ञात होता है कि यह अपने समय के विख्यात संत थे। इसी कारण इनका विवरण भक्तमाल जैसे ग्रंथ में उपलब्ध हो पा रहा है। यह भगवत्प्राप्त सिद्ध पुरुष थे, जो आवश्यकता पड़ने पर चमत्कार दिखाने में भी समर्थ थे। गाँव वालों द्वारा व्यर्थ ही अपवाद फैला देने पर शिशु बनकर, रात्रि भर इनके यहाँ रुकने वाली स्त्री के स्तनों से दुग्धपान करने की घटना इनका सिद्धत्व सिद्ध करने के लिए पूर्णतः पर्याप्त है।

दादूपंथ में लिखित और प्राप्त प्राचीनतम प्रतियों में से एक प्रति[27] जिसका लिपिकाल वि.सं. 1693 बताया जाता है, में संत कांन्हां की वाणी का संकलन है या नहीं, मुझे पता नहीं है क्योंकि प्रयत्न करने के उपरान्त भी यह प्रति मुझे देखने को दादू-महाविद्यालय के पदाधिकारियों ने उपलब्ध नहीं कराई। लुवेण, बेल्जियम के डॉ. विनान्त एम. कलेवर्ट के पास इस प्रति की फोटोकॉपी उपलब्ध है किन्तु कई बार ईमेल व पत्र भेजने के उपरान्त भी उन्होंने इस संबंध में कोई उत्तर नहीं दिया। दादूधाम, नरायना में उपलब्ध वि.सं. 1710 में लिखित पुस्तक क्रमांक 501 में इनके तेइस पद तथा छः साखियों का संकलन मिलता है। यहीं के ग्रंथांक 496 की चर्चा ऊपर हो चुकी है जिसका लिपिकाल वि.सं. 1660 है। इसमें रावळ योगी कांन्हड़िया और चारण कवि कांन्हिया की रचनाओं का संकलन तो है किन्तु आलोच्य कांन्हां की वाणी का संकलन नहीं है। वि.सं. 1660 से 1670 के मध्य संकलित-संपादित रज्जबजी की सरबंगी में इनका एक पद 'थकित निहचल कौ अंग' में पाँचवें पद के रूप में संग्रहित है। वि.सं. 1684 में संतदासजी मारु के शिष्य गोपालदासजी द्वारा संकलित-सम्पादित 'सरबंगी-सरह-चिंतामणि' में इनके छः पद संकलित मिलते हैं। इस विवरण से यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं रहता कि इनके पदों और साखियों का प्रचार-प्रसार वि.सं. 1660 से पूर्व ही अच्छी मात्रा में हो चुका था। इनके पद-साखियों का विश्लेषण करते हैं, तब पाते हैं कि न तो इनकी रचनाओं में वयणसगाई नामक अलंकार अनिवार्यतः प्रयुक्त होता रहा है और न इनकी भाषा-शैली ही चारणी है। वस्तुतः इनकी भाषा ब्रजी है जिस पर प्रमुखतः बोलचाल की राजस्थानी व यत्र-तत्र पंजाबी का प्रभाव है। जहाँ तक इन रचनाओं में प्रयुक्त शब्दावली और उपलब्ध विषयवस्तु का प्रश्न है, वह नाथ-सिद्धों जैसी है। इन्होंने नाद, बिन्दु, कला, समरस, रस, शून्य, अकल, सहज, जोगपंथ, अणभै, करुणा, शिव जैसे शब्दों का प्रयोग पुष्कल मात्रा में उन्हीं अर्थों में किया है, जिनमें नाथ-सिद्ध करते रहे हैं। हाँ, सुरति--निरति प्रवृत्ति--निवृत्ति जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग विरल मिलता है। जहाँ नाथयोगी मन-पवन को बाँधकर यौगिक क्रियाओं को करने का परामर्श देते हैं, वहाँ ये सर्वत्र भगवन्नामजप का आश्रय लेने का उपदेश देते हैं।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने कबीर और गोरख की तुलना करते हुए लिखा है कि गोरखवाणी में भगवन्नामजप[28] की कोई चर्चा नहीं है किन्तु हम इस स्थापना से सहमत नहीं हैं, क्योंकि गोरख की सब्दियों में नामजप का उल्लेख[29] मिलता है। हाँ, कबीरादि निर्गुणिया संतों ने नामजप पर जितना ज्यादा जोर दिया है उतना नाथयोगी गोरख की वाणी में दृष्टिगोचर नहीं होता है। आलोच्य कांन्हां की वाणी में उपलब्ध भगवन्नामजप विधान इनको संतों से प्रभावित मानने का सर्वाधिक सबल प्रमाण है। इनका एक पद तो संतप्रवर श्रीदादूजी के पद से भाषा, शैली तथा भावों में एकदम समान है।[30] दोनों ने ही अपने-अपने पदों का शीर्षक 'पहरा' लिखा है। गुरु नानकदेव की वाणी में भी इसी प्रकार की रचना मिलती है। हमारा अनुमान, इस पद को देखकर यह है कि ये दादूजी के समकालीन अथवा आसन्न पूर्ववर्ती थे, संभवतः यही प्रमुख कारण है कि दादूपंथ में इनकी वाणी बहुत ही श्रद्धाभक्ति से ग्रंथों में लिखी और पढ़ी जाती रही है।

'दादूपंथी-आरती-समुच्चय' में भी इनकी आरती सम्मिलित है जो समय-समय पर सायंकालीन आरती के समय गाई जाती रही है।[31] गायक संतों के द्वारा संग्रहित और लिखित गुटकों में भी इनके पदों का संकलन मिलता है जो इस बात का पक्का प्रमाण है कि दादूपंथी गायकों में कांन्हां के पदों का गायन प्रचलित रहा है। फिर भी इनकी वाणी में दो-चार पौराणिक नामों के अतिरिक्त न किसी सिद्धयोगी और न निर्गुणी-सगुणी संतभक्तों के नाम मिलते हैं। इनके एक पद में 'निरंजनी' शब्द का प्रयोग हुआ है जो अलख-निरंजन के उपासक योगी-सिद्ध का ही वाचक होना संभव है, क्योंकि 'निरंजनी-पंथ' के प्रवर्तक हरीदास निरंजनी का समय काफी परवर्तीकालीन है। हरीदासजी के साधु होने का समय वि.सं. 1656 है।[32] उन्होंने निरंजनी-सम्प्रदाय की स्थापना वि.सं. 1680 के आसपास की थी और वह भी गोरखनाथजी के मत से प्रभावित होकर जो प्रायः 'अलख-निरजंन' शब्द से ही आपस में अभिवादन तथा सम्बोधन किया करते हैं। एक बात और, साखी भाग की प्रारंभिक साखियों में इन्होंने सिद्धों की वन्दना की है।[33] नाथयोगी भी सिद्ध ही कहलाते रहे हैं।[34] अतः इनका नाथयोगियों से प्रभावित होना समीचीन लगता है। इन्होंने प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तो अपने पद-साखियों में एकाध बार ही किया है, किन्तु इस विषय पर इन्होंने अपने विचार अवश्य व्यक्त करते हुए निवृत्ति-मार्ग का अवलम्बन विधेय बताया है। निवृत्ति-मार्ग को विधेय[35] बताने से इनका आश्रम संन्यास से था, ऐसा मानना सर्वथा समीचीन है।

दादूपंथ--परिचयकार ने इनके बारे में लिखते हुए इनका परिचय इस प्रकार दिया है-- 'इनका विशेष परिचय तो ज्ञात नहीं हो सका किन्तु इनकी रचना से ये राजस्थानी ही ज्ञात होते हैं। इनकी वाणी मैंने दादूधाम, नरायना के पुस्तकालय के बस्ता नं. 6 (अब इसका ग्रंथांक 502 हो गया है) में देखी थी। उसमें 162 साखी (वास्तव में 161 ही हैं, संख्या लगाने में प्रतिलिपिकार से भूल हो गई है) और 15 रागों में 122 पद हैं। हो सकता है, यह वाणी इनकी पूर्ण नहीं है। उसमें से एक पद उदाहरण के रूप में देखें।[36]

उक्त तेरह स्रोतों से सम्पादित इनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार हैः- सर्वाधिक सामग्री वि.सं. 1780 में लिखित ग्रंथांक 561 में 180 पद व 161 साखियाँ मिली हैं। इससे कम सामग्री वि.सं. 1851 में लिखित ग्रंथांक 502 में 122 पद व 161 साखियाँ मिली हैं। वि.सं. 1796 - ग्रंथांक 2, वि.सं. 1824 - ग्रंथांक 4, वि.सं. 1826 - ग्रंथांक 309 व वि.सं. 1817 में लिखित पुस्तकों में मात्र 44-44 पद मिले हैं। वि.सं. 1710 ग्रंथांक 501 व वि.सं. 1785 - ग्रंथांक 497 में लिखित ग्रंथों में 23 पद तथा 6 साखियाँ मिली हैं। राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के ग्रंथांक 34 लिपिकाल वि.सं. 1710-1715 व ग्रंथांक 74 में क्रमशः 3 पद और 27 पद व 6 साखियाँ मिली हैं। यद्यपि ग्रंथांक 74 का लिपिकाल ज्ञात नहीं है, तथापि ग्रंथ की स्थिति तथा कागज की बनावट आदि के अनुसार इसका लिपिकाल वि.सं. 1700 से 1730 के मध्य होना चाहिए। रज्जबजी की सरबंगी में एक पद तथा गोपालदासजी की सरबंगी-सरह-चिंतामणि में 6 पद हैं। उक्त सभी स्रोतों से मिली सामग्री के आधार पर लड़बावरा कांन्हां की रचना का परिमाण 186 पद और 165 साखियाँ बैठता है।

दो-चार पदों को छोड़कर इनके अन्य पद कूटशैली के नहीं है, तथापि वे नाथ--सिद्धों की शब्दावली से परिपूर्ण हैं और इसी कारण वे पद कई स्थानों पर दुरूह भी हो गए हैं। साधनात्मक कई शब्दों के अर्थ खोलने में हम असमर्थ रहे हैं। इनकी भाषा राजस्थानी व पंजाबी मिश्रित व्रजी है, किन्तु इन्होंने उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी अच्छी मात्रा में किया है। वैसे इनके द्वारा प्रतिपादित विषय सामग्री को देखकर लगता है कि ये सामान्य पढ़े-लिखे बहुश्रुत संत थे।

उक्त वर्णित जानकारी की समीक्षा

(1) रतनू कांन्हां और लड़बावरा कांन्हां : रतनू कांन्हां का अन्तिमकाल सन् 1728 ईस्वी निश्चित है। इसके विपरीत आलोच्य कांन्हां की रचनाएँ रज्जबजी की सरबंगी में संग्रहित हुई मिलने से वि.सं. 1660 के पूर्व की रचना सिद्ध होती है। अतः दोनों के समय में अत्यधिक अन्तर होने से इन दोनों के एक होने की कोई संभावना नहीं है।

(2) आढ़ा कांन्हां और लड़बावरा कांन्हां : यद्यपि आढ़ा कांन्हां और आलोच्य कांन्हां का समय लगभग समान लगता है तथापि इनके एक ही व्यक्ति होने की संभावना बिल्कुल नहीं है।

(3) मेहडू कांन्हां और लड़बावरा कांन्हां : यद्यपि मेहडू कांन्हां का समय अभी तक लेखक को अज्ञात है तथापि इनके गुजरात के कच्छ प्रदेश के निवासी होने, चारणी शैली के कवि होने तथा भाषा पर गुजराती का प्रभाव होने के कारण इनका और लड़बावरा कांन्हां का एक होना असंभव है। मेहडू कांन्हां आजीवन गृहस्थ रहे, ऐसी जनश्रुति है जबकि आलोच्य कांन्हां का आश्रम संन्यास रहा है। अतः दोनों का साम्य स्थापित होना मुश्किल है।

(4) मोतीसर कांन्हां और लड़बावरा कांन्हां : राजस्थानी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. शक्तिदान कविया की मान्यता है कि मोतीसर कांन्हां का समय वि.सं. 1750 से पहले का किसी भी सूरत में नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में लड़बावरा कांन्हां और मोतीसर कांन्हां का एक होना असंभव है।

(5) रावळ कांन्हड़िया और लड़बावरा कांन्हां : रावळ कांन्हड़िया के नाम से ही यह सिद्ध होता है कि ये रावळ शाखा के योगी थे, जबकि लड़बावरा कांन्हां किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित संत/योगी नहीं थे। इसके अतिरिक्त दोनों की भाषा और प्रतिपादित विषयवस्तु-दोनों में भी अन्तर है। अतः दोनों का एक ही व्यक्ति होना मुश्किल है।

(6) बारहठ कांन्हिया और लड़बावरा कांन्हां : बारहठ कांन्हिया का समय वि.सं. 1500 से 1580 के बीच का है, जबकि लड़बावरा कांन्हां का समय वि.सं. 1580 से वि.सं. 1663 के मध्य का है। बारहठ कांन्हिया ने अपनी कविता में अपना नाम कांन्हिया प्रयुक्त किया है जबकि लड़बावरा कांन्हां ने कांन्हां शब्द का व्यवहार किया है। जहाँ कांन्हिया की भाषा-शैली ठेठ मारवाड़ी--भाषा की चारणी शैली है, वहाँ कांन्हां की भाषा-शैली नाथ-सिद्धों से प्रभावित बोलचाल की पंजाबी व राजस्थानी मिश्रित ब्रजी है। बारहठ कांन्हिया विश्नोई-सम्प्रदाय के सर्मपित अनुयायी थे, जबकि लड़बावरा कांन्हां किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित अथवा सम्प्रदाय विशेष के प्रवर्तक नहीं हैं। कांन्हिया की रचनाएँ स्वल्प मात्रा में उपलब्ध हैं, जबकि कांन्हां की रचनाओं के नाम पर मात्र दादूपंथी--संग्रहग्रंथों में ही 186 पद तथा 165 साखियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। यदि अन्यत्र और खोज की जाए तो इनकी और रचनाएँ मिलना संभव हैं। बारहठ कांन्हिया की रचनाएँ जहाँ विश्नोई-सम्प्रदाय के अनुकूल विषय-प्रतिपादित करती हैं, वहाँ कांन्हां की रचनाओं में नाथ-सिद्धों की विचारधारा के साथ-साथ संत-मतानुमोदित सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ मिलता है। विश्नोई-सम्प्रदाय में विष्णु को उपास्य बताया गया है और यज्ञ-हवनादि करना अनिवार्य कहा गया है, जबकि कांन्हां ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि को उस परमात्मा की रचना बताते हैं जो उनका (कांन्हां का) उपास्य है। वह ओऽम् रूप है। उसी ने अभिन्न-निमित्तोपादन-कारण के रूप में सृष्टि का निर्माण किया है। कांन्हां यज्ञ-हवनादि की कठोर निंदा करते हैं। बारहठ कांन्हिया पुत्र-प्राप्ति-हेतु ही जांभोजी के शरणागत हुए थे। इस प्रकार ये आजीवन गृहस्थ ही रहे, जबकि लड़बावरा कांन्हां वैराग्य को महनीय बताकर अंगीकार करना प्रतिपादित करते हैं। कई स्थानों पर लड़बावरा कांन्हां कहते हैं कि उनको परब्रह्म--परमात्मा का अपरोक्ष-अनुभव हो गया है और उसी के बल पर वे तत्त्वों का निरूपण कर रहे हैं। इसके विपरीत बारहठ कांन्हिया की रचनाओं में ऐसी

किसी भी स्थिति के दर्शन नहीं होते।

डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने बारहठ कांन्हिया का एक पद अपनी पुस्तक जांभोजी, विश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य में उद्धृत किया है किन्तु यह पद कांन्हिया का न होकर लड़बावरा कांन्हां का है। कारण स्पष्ट है कि पद में छाप कांन्हियां न होकर कांन्हां है। पद की विषयवस्तु विश्नोई-पंथ की विषय-वस्तु के अनुसार न होकर लड़बावरा कांन्हां के अन्य पदों में व्यक्त विचारों से शत-प्रतिशत मेल खाती है। अतः हमारा विश्वास है कि किसी अनजान व्यक्ति ने कांन्हां और कांन्हिया को एक समझकर कांन्हां का पद विश्नोई-सम्प्रदाय की पुस्तकों में कांन्हिया के नाम पर संग्रहित कर दिया। पाठकों के लाभार्थ कांन्हां छाप का यह पद लेखान्त में द्रष्टव्य है।[37] बारहठ कांन्हिया ने गुरु के रूप में जांभोजी का स्पष्ट नामोल्लेख किया है और उनकी महिमा में बावनी ग्रन्थ बनाया है, जांगड़ो गीत भी जांभोजी को ही समर्पित है। इसके विपरीत लड़बावरा कांन्हां ने पूर्वकालीन सिद्धों को तो नमस्कार किया है, किन्तु किसी भी शरीरधारी गुरु अथवा सिद्ध, नाथ का नाम अपनी रचनाओं में उल्लिखित नहीं किया है। जैसाकि पूर्व में लिखा जा चुका है कि इनको भी वैसे ही अकस्मात गुरु की प्राप्ति हुई थी जैसे संत दादूजी को प्राप्त हुई थी। उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने भाना की सेवा को त्यागकर भगवन्नामजप का आश्रय लिया था और परमात्मा का अपरोक्ष--अनुभव प्राप्त किया था। लड़बावरा कांन्हां का सिद्धत्व सिद्ध करने के लिए भक्तमाल में उल्लिखित घटना उपलब्ध है, किन्तु बारहठ कांन्हिया के सम्बन्ध में ऐसा कोई उल्लेख हमें अभी तक नहीं मिला है। बारहठ कांन्हियाँ की जो रचनाएँ सरबंगी सरह चिन्तामणि में मिली है, वे विश्नोई हस्तलेखों में मिली रचनाओं से भिन्न है। अतः पाठकों के लाभार्थ उनको यहाँ प्रस्तुत कर देना लाभकारी रहेगा : राग रामगिरी - *वाराणसी पढिवा किस्यूं बसीजै, आरंभ कीजे किस्यूं अनेक। होइ अखाँरा माहिं देखी, वंद चहूँ रो अर्थ विवेक।।टेक।।*

पढि गुणि किसी लिखाणा पोथी, आगम नीगम अरथ उधेड़। ररा ममा में आवी रहियौ, नौ व्याकरणां तणौ विवेक।।1।।

जढ सगले विण राम जाणियै, जाणै राम तकै जण जाण। हेकणि नाणइ पारयउ तरियै, पढिजै किसा अठार पुराणा।।2।।

कांन्हइयौ कहै राम, मुखि कहितां, और रिदां तैं ऊतरिया। अख्यर उभै लिख्या अभिअंतर, अहनिसित पढे सु ऊबरिया।।3।। (46 वाँ अंग/पदांक-1)।

कवित्त : *आंबौ काटि अजाण तेथि बंबूळ जामायो। सोवन कुसि घास की खेत को द्रम समि वायौ।*

चूल्है करै कनक चरई ताभि दाधी। तलि चंदन बालियौ माहिं मूरख खलि राखी।।

बलि बलि जनम न आवई नथी करम गति कांन्हियां। राम बिना जनम खोयो रतन, सुकौड़ौ सांटै कांन्हियां।। (49 अंग/कवित्त 54)।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि लड़बावरा कांन्हां ऊपर वर्णित रतनू कांन्हा, आढ़ा कांन्हां, मेहडू कांन्हां, मोतीसर कान्हां, रावळ कांन्हड़िया और बारहठ कांन्हिया से सर्वथा भिन्न रचनाकार हैं, जिन्होंने विपुल साहित्य का निर्माण किया। हमें दादूपंथी-संग्रह-ग्रंथों में 165 साखियों और 186 पदों के रूप में इनकी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, जिससे इनका एक अच्छा रचनाकार होने का प्रमाण मिलता है। यह सत्य है कि इनकी रचनाएँ न छंद शास्त्र के अनुसार हैं और न ही साहित्यशास्त्र के रस-अलंकार आदि का परिपाक इनमें मिलता है। दार्शनिक-स्तर पर भी कोई एक सुनिश्चित विचारधारा का प्रतिपादन इनकी रचनाओं में नहीं हुआ है। फिर भी इनकी रचनाओं में इनके जितने भी विचार अभिव्यक्त हुए हैं वे स्पष्ट और परिपक्व हैं। इनकी साखियाँ न दोहा छंद के अनुसार हैं और न सब्दियों के अनुसार हैं। इनमें पादों/चरणों की कोई निश्चित संख्या भी नहीं है। इन साखियों में ही कुछ

श्लोक भी हैं जिनकी भाषा भ्रष्ट संस्कृत है। ऐसे श्लोकों की कुल संख्या 25 है। संतों की वाणियों में पाया जाने वाला अंग विभाजन भी इनमें नहीं है, जिसके कारण इनका विषयानुसार विवेचन करना आसान नहीं है। पदों का विभाजन रागानुसार है, जो इस प्रकार है--

1. राग सोरठि - 12 पद। 2. राग ललित - 1 पद। 3. राग धनाश्रि - 9 पद। 4. राग विलावल - 13 पद। 5. राग गौंड - 6 पद। 6. राग रामगिरी - 17 पद। 7. राग भैरूँ - 5 पद। 8. राग आसावारी - 19 पद। 9. राग गूजरी - 9 पद। 10. राग बसन्त - 4 पद। 11. राग मारू - 9 पद। 12. राग तिलंग - 4 पद। 13. राग श्री - 4 पद। 14. राग माझ - 4 पद। 15. राग गौडी - 38 पद। 16. राग केदार - 23 पद। 17. राग गंम्भीर - 9 पद। इस प्रकार कुल राग 17 तथा कुल पद 186 हैं। इस गिनती में हमने उस पद को सम्मिलित नहीं किया है जो जांभाणी-हस्तलिखित-ग्रन्थों के आधार पर संग्रहित करके डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने अपनी पुस्तक में छपाया है और जिसकी चर्चा ऊपर विस्तार से आ चुकी है। यदि इस पद को भी उपरोक्त संख्या में जोड़ दिया जाए तो पदों की कुल संख्या 187 हो जायेगी।

संदर्भ

1. श्री दादू, कबीर, नामदेव, रैदास और हरदास नामक संतों की वाणियों का संकलन जिन पुस्तकों या पड़तों में मिलता है, उनको दादूपंथों में पंचवाणी-संग्रह-पुस्तक कहते हैं। अलग-अलग सम्प्रदायों में वाणीकार संत अलग-अलग होते हैं। उक्त नाम दादूपंथ के संदर्भ में है। **2.** दादूधाम, नरायना के ग्रन्थांक 2, 4, 309, 496, 497, 501, 502, 561। **3.** राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर शाखा के ग्रन्थांक 34 एवं 74। **4.** वि. सं. 1817 में चरणदास दादूपंथी, शिष्य प्रेमदास द्वारा लिखित पुस्तक। **5.** लुवेण, बेल्जियम के प्रोफेसर विनान्त एम. कलेक्ट द्वारा सम्पादित और मनोहर पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित संस्करण। इसमें कांहां छाप के 20/59-60, 63/41, 65/7, 75/ 6, व 126/25 कुल छः पद, योगी कांन्हइयां (रावल्ल कांन्हां बारहठ) के 46/1 व 49/54 कुल दो पदादि (एक पद, एक कवित्त) संग्रहित है। **6.** वि. सं. 1764, 1785, 1817, 1787 और 1851 में लिखी पुस्तकों के आधार पर मेरे द्वारा सम्पादित 'रज्जब की सरबंगी' के नाम से सन् 2010 में प्रकाशित पुस्तक। **7.** चारण-साहित्य का इतिहास, भाग-1 पृष्ठ 233--234 तथा 269। **8.** वहीं पृष्ठ 158। 9. डॉ. शक्तिदान कविया का पत्र दिनांक 19-7-2005। **10.** चारण-साहित्य का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 262। **11.** डॉ. शक्तिदान कविया का पत्र दिनांक 19-7-2005। **12.** त्रैमासिक पत्रिका -- वैचारिकी, भाग--15, अंक--2, पृष्ठ 40-41 लेखकः गिरधरदान रतनू, दासोड़ी। **13.** डॉ. शक्तिदान कविया का पत्र दिनांक 6-4-2005। **14.** जांभोजी, विश्नोई-सम्प्रदाय और साहित्य, भाग--1, पृष्ठ 535, लेखक : डॉ. हीरालाल माहेश्वरी। **15.** वहीं, पृष्ठ 535। **16.** त्रैमासिक पत्रिका--वैचारिकी भाग--15, अंक--2, पृष्ठ 40--41 **17.** डॉ. शक्तिदान कविया का पत्र दिनांक 19-7-2005। **18.** वही। **19.** चारण-साहित्य का इतिहास भाग--1 पृष्ठ 285--286। **20.** वही, पृष्ठ 243। **21.** राजस्थानी--संत--साहित्य--परिचय, लेखक--दादूपंथी नारायणदासजी स्वामी। **22.** दादूवाणी--प्रवचन--पद्धति, लेखक : कविरत्न संतकवि नारायणदासजी स्वामी, पुष्कर निवासी, पृष्ठ 6। **23.** वही, पृष्ठ 6-7। **24.** राघवीय-भक्तमाल, मूल छंदांक 753, टीकाकार संतकवि, कविरत्न नारायणदासजी। **25.** कांन्हां ग्रंथावली का पदांक 30। **26.** वही, पदांक 51। **27.** लुवेण, बेल्जियम के प्रोफेसर विनान्त एम. क्लेवर्ट के पास इस प्रति की एक छायाप्रति उपलब्ध है। मैंने उनसे इस प्रति की एक छायाप्रति मुझे उपलब्ध करा देने की प्रार्थना की है, किन्तु अभी तक मुझे नहीं मिल पाई है। इसकी मूलप्रति दादू-महाविद्यालय में बताते हैं, किन्तु ठीक से निर्णय नहीं हो पा रहा है कि यह महाविद्यालय के अधिकार में है अथवा महासभा के अधिकार में है। है या नहीं, इसका भी ठीक से निर्णय नहीं हो रहा है। डॉ शहाबुद्दीन ईराकी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन' पृष्ठ 23 पर लिखा है कि वे उक्त प्रति सहित वि.सं. 1733 में नरहरिदासजी द्वारा लिखित हस्तलेख की श्वेत-श्याम छायाप्रति सन् 1985 में दादू महाविद्यालय में ले गये और उन्होंने मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के इतिहास

विभाग की सेमीनार लाइब्रेरी में जमा करा दी है। **28.** कबीर-ग्रंथावली, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 66। **29.** गोरखवाणी, डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ 101-102। **30.** दादूवाणी, मंगलदास स्वामी, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ 483, राग जंगली गौड़ी, पदांक 41, पहरा शीर्षक। **31.** आरती-समुच्चय में इनकी आरती 21वें क्रमांक पर मिलती है। देखें, दादूधाम, नरायना का ग्रन्थांक 497। **32.** सुन्दर-ग्रन्थावली, विद्याभूषण पुरोहित श्रीहरिनारायणजी शर्मा, भूमिका, पृष्ठ 28 पर पुराने पत्रों की नकल के उद्धरण। **33.** कान्हां ग्रंथावली की साखी क्रमांक 4। **34.** महामहोपाध्याय कविराज डॉ. गोपीनाथ कविराज, भारतीय--साधना की धारा, पृष्ठ 97। **35.** कान्हां-ग्रंथावली, साखी 26, 141, 137। **36.** राजस्थानी-संत-साहित्य-परिचय, पृष्ठ 181। **37.** इस पद का पाठ इस प्रकार मिलता है-

जहां अवर न पावै बास, सुंन्य नगर पावंही।। टेक ।।
नगर नांव बेगमपुरा, कोउ बसै स बेगम होय।
जतन--जतन करि पोहचिये, फिर आवागुंवन न होय।
जहाँ लोक--लाज की गम नहीं, सकल दिवाना देस।
जे उत पहुंचे चालि के, फिरि बोहड़ि न काछै बैस।।
जाति बरण जाँह कुल नहीं, ऊँच नीच न कहाय।
सुरति निरति दोऊं धरे, तो उस मारगि जाय।।
सकल कुटंब एकतर भया, पद-पद समाने प्रांन।
ग्यांन ध्यांन पाछै रह्यौ, तित कान्हां गळतांन।।

--प्रति संख्या 227 (म) स्रोत-जांभोजी, विश्नोई-सम्प्रदाय और साहित्य, पृष्ठ 537। **38.** कहाँ छिपौगे कान्हां।

राम-राम कहि खलक बिगोई, कुफर करै कुफराना।।
कान्हां राम-राम का हेती, तुरक कटक ले धाया।।
उठबे कान्हां क्या तू बैठा, चलि दीवानि बुलाया।।
मुल्ला काजी अरु मौलांणां, महजरू कीया भारी।।
करि महजर मीरां की सौप्याँ, तहाँ राखै दीन मुरारी।।
रांम रहिंम कहियत प्रभु मेरा, मैं तिस बिन और न जाना।।
कान्हां कहै किया जन मुकता, भगति प्रतीति बषांनां।।104।।

--कान्हां--ग्रंथावली, पदांक 104।

284, सुलतान सदन,
2 लेन नं. 3 वेस्ट इंड मार्ग
सैदुलजाब, महरौली, नई दिल्ली-110030
मो. 9351503555

●

गाँधी-एक संकल्प

गांधी का मतलब है– एक वज्र संकल्प है। यहाँ न तर्क, न स्थिति का आतंक और न व्यवहार का दबाव।

उन्होंने जब साबरमती के आश्रम को छोड़ा, तो छोड़ा, उस समय अटगाम की सार्वजनिक सभा में गर्जन किया था–

'स्वराज्य प्राप्त किए बिना मैं साबरमती आश्रम वापस नहीं लौटूंगा। कौवे कुत्ते की मौत मरूँगा। स्वराज्य की कामना के लिए दर-दर भटकूँगा या मर जाऊंगा, पर वापस नहीं लौटूँगा।'

ऐसा ही उन्होंने सेवाग्राम को छोड़ते हुए कहा–

'अब हम सर प कफन बाँध चले।'
फिर मंत्र था, जो भागवत का
'गर्जित, गर्जित जैसे था -
करो या मरो- डू ऑर डाई'
सुफल था- 'भारत का स्वातंत्र्य।'
'गाँधी संकल्प था। संकल्प की सिद्धि।'

तार सप्तक : पुनर्मूल्यांकन

राकेश भारतीय

'तार सप्तक' यानी गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माधवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय (संकलनकर्ता और सम्पादक) की कविताओं का प्रकाशन एक पुस्तक के रूप में 1943 में हुआ। दूसरे संस्करण के रूप में 'तार सप्तक' 1963 में आया, संकलनकर्ता और सम्पादक वही। 2023 में प्रथम संस्करण आये हुए अस्सी साल और दूसरा संस्करण आये हुए साठ साल बीत गये। इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में एक पुनर्मूल्यांकन उचित होगा कि 'तार सप्तक' के नाम से आये 1943 के युवक, 1963 के अधेड़ और 2023 तक तो स्वर्गीय ही हो चुके इन सात कवियों के इस कविता संग्रह में स्थायी महत्त्व की कोई कविता थी भी कि नहीं, ऐसे संग्रह लाने की 'मौलिक योजना' अपनी जगह पर, 'मौलिक कविता' के रूप में पाठकों पर अब भी प्रभाव छोड़ पाने में समर्थ कोई कविता मौजूद है कि नहीं इत्यादि इत्यादि। यह पुनर्मूल्यांकन मात्र 'तार सप्तक' (बाद में और 'सप्तकों' के आने की वजह से जिसे 'पहला सप्तक' भी कहा गया) में संकलित कविताओं के आधार पर है, सम्मिलित कवियों की बाद की कविताओं या बाद की कविताओं की श्रेष्ठता पर आधारित उनके साहित्यिक महत्व से प्रभावित हुए बिना।

संकलनकर्ता अज्ञेय की प्रथम और द्वितीय संस्करण के साथ प्रस्तुत भूमिका तो है ही, कवियों के 'वक्तव्य' भी पुस्तक में हैं जिनमें उन्होंने अपने-अपने हिसाब से तमाम तरह की टिप्पणियाँ भी की हैं अपना-अपना परिचय देने के साथ। उनकी कविताओं के गुण-दोष का विवेचन करते समय हम उनकी टिप्पणियों का भी यथास्थान उल्लेख करते चलेंगे। सबसे पहले अज्ञेय की प्रथम संस्करण की भूमिका को देखें। 'विवृति और पुरावृत्ति' शीर्षक से प्रथम संस्करण की भूमिका के अंतर्गत 'सात युवक कवियों' की रचनाएं संग्रहीत करने की पृष्ठभूमि देने के साथ कहा गया है ... "यह परिणाम न निकाला जाये कि वे कविता के किसी एक 'स्कूल' के कवि हैं या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं।" फिर कहा गया है कि- "काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है। कवियों के 'प्रयोगशील' होने पर किंचित जोर देने के बावजूद यह अभिप्राय नहीं है कि प्रस्तुत संग्रह की सब रचनाएं प्रयोगशीलता के नमूने हैं" जैसी टिप्पणी के द्वारा पहले से ही रक्षात्मक मुद्रा भी अपना ली गई है। 'परिदृष्टिः प्रतिदृष्टिः' शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत दूसरे

संस्करण की भूमिका में कहा गया है, “सप्तक के कवियों का विकास अपनी-अपनी दिशा में हुआ है।” साथ ही गर्वोक्ति भी है कि- “सभी चकित हैं कि ‘तार सप्तक’ ने समकालीन काव्य इतिहास में अपना स्थान बना लिया है।” “परवर्ती काव्य-प्रगति को समझने के लिए इसका पढ़ना आवश्यक है।” इत्यादि

पहले कवि के रूप में सम्मिलित हैं मुक्तिबोध जिनकी अठारह कविताएँ संकलित हैं। मुक्तिबोध ने ‘वक्तव्य’ में अपने जीवन और सृजन को लेकर कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं-- “.... दार्शनिक प्रवृत्ति.... जीवन और जगत के द्वंद्व- इन सबको सुलझाने की, और एक अनुभव सिद्ध व्यवस्थित तत्त्व-प्रणाली अथवा जीवन-दर्शन आत्मसात कर लेने की दुर्दम प्यास मन में हमेशा रहा करती। आगे चलकर मेरे काव्य की गति को निश्चित करने वाला सशक्त कारण यही प्रवृत्ति थी।” - ‘यहाँ यह स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं कि मेरी हर विकासस्थिति में मुझे घोर असन्तोष रहा और है। मानसिक द्वंद्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है।’ - “मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन-स्थिति में छिपा है।” अब अगर मुक्तिबोध की सम्मिलित कविताओं को देखें तो कई जगह अभिव्यक्ति की छायावादी शैली का प्रभाव स्पष्ट है, यथा--

“व्यक्तित्व का सौरभ लिये, व्याकुल निशा सा
निकटता के निज क्षणों में
जो कि उर की बालिका मौनतम विश्वास है।”
(आत्मा के मित्र मेरे)

“घनी रात, बादल रिमझिम है, दिशा मूक, कवि का मन गीला
यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव जीवन है क्षणभंगुर
ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदन से ही आतुर”
(मृत्यु और कवि)

बिलकुल अलग ही तरह की संवेदनशीलता के तहत अलग ही तरह की अभिव्यक्ति वाली कविताओं के कवि के रूप में मुक्तिबोध की बाद की प्रतिष्ठा का पूर्वाभास देनेवाली कुछ पक्तियाँ ‘नूतन अहं’ कविता में देखने लायक हैं --

“अंतर्मन यह टार रोड के अंदर नीचे बहने वानी गटरों से भी
है अस्वच्छ अधिक,
यह तेरी लघु विजय और लघु हार।
तेरी इस दयनीय दशा वा लघुतामय संसार
अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में
जैसे घूरे पर उट्ठा है
धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त।”

‘अपना पथ ढूँढनेवाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति’ के कथन के अनुरूप ही मुक्तिबोध एक जटिल और गझिन सी संवेदना से उद्‌भूत काव्य-पक्तियाँ लिखने का प्रयास कर रहे हैं, यहाँ तक कि ‘पूँजीवादी समाज के प्रति’ कविता में पूँजीवादी व्यवस्था को कोसने में भी वही अंदाज़ है--

“तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझ को देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि है उग्र
तेरा नशा तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र”

यहाँ यह भी स्पष्ट है कि ऐसी पक्तियाँ कोसने की उतावली से सपाटबयानी का शिकार हो रही हैं, तुक मिलाने के चक्कर में ‘रोग- कृमि है उग्र’ जैसी अटपटी शब्दावली भी आ गई है। बीस वर्षों के बाद दूसरे संस्करण के साथ गये मुक्तिबोध के ‘पुनश्च’ शीर्षक वक्तव्य में वे (सम्भवतः इस अंतराल में दारुण आर्थिक कष्ट झेलने के फलस्वरूप) जीवन के आर्थिक पक्ष की महत्ता स्वीकार करते हुए से कहते हैं-- “.....यही मानना पड़ता है कि साधारण श्रेणी में रहने वाले हम लोगों को अस्तित्व-संघर्ष के प्रयासों में

ही समाप्त होना है।"

और- 'जीवन और परिवेश की विषमता की यह स्थिति आभ्यन्तर लोक में भी दु:स्थिति उत्पन्न करती है, यह एक दारुण सत्य है, परिणामतः स्वाधीनता के इस युग में मेरी कविता सघन बिम्ब-मालिकाओं में अधिकाधिक प्रकट होने लगी। अचानक अंतर्मुख दशाएँ और भी दीर्घ और गहन होती गयी। इस वक्तव्य के बाद कविता 'एक आत्म-वक्तव्य' छपी है जो मुक्तिबोध के ही शब्दों में "1963 की ही रचना है, अपेक्षाकृत छोटी है।" इस कविता का पारायण कर कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जो आगे चलकर प्रकाश में आई मुक्तिबोध की विशिष्ट काव्याभिव्यक्ति का संकेत देती हैं--

"अँधियाली गलियों में घूमता है
"तड़के ही, रोज
कोई मौत का पठान
माँगता है जिंदगी जीने का ब्याज
अनजाना कर्ज
माँगता है चुकारे में, प्राणों का मांस।"

पर, मुक्तिबोध की काव्य-प्रतिष्ठा का कारण बनी, हिन्दी साहित्य में स्थायी महत्त्व की मानी जाने लायक, 'तार-सप्तक' में उनकी संग्रहीत कोई कविता नहीं है, यह स्पष्ट है।

दूसरे नम्बर पर प्रस्तुत कवि हैं नेमिचन्द्र (नेमिचन्द्र जैन) जिनका दोनों ही संस्करणों का वक्तव्य पढ़ने लायक है। पहले संस्करण के वक्तव्य में वे-- "प्रस्तुत कविताओं में से अधिकांश की मानसिक पृष्ठभूमि में संक्रांति के रंगों की ही प्रधानता है। संस्कार और विवेक की चेतना ही इन कविताओं का विषय है।" "जिस व्यक्ति में सौंदर्यबोध अत्यंत क्षीण है, उसे किस हद तक जीवित कहा जायेगा यह कहना कठिन है।" "....आज के हिन्दी के अधिकांश काव्य में या तो उच्छ्वास है या फिर पैटर्न, दोनों ही रास्तों से कविता की हत्या होती है।" जैसी अपनी और दूसरों की कविताओं के बारे में स्थापना देते हैं। अब इसके आलोक में उनकी संग्रहीत कविताओं को देखा जाये तो 'अनजाने चुपचाप' कविता तो सौंदर्य को समर्पित छायावादी शैली की ही कविता लगती है, कुछ-कुछ सुमित्रानंदन पंत की शैली से मिलती हुई--

"यह मधुमास सजीला चुप-चुप
तेरे उर के आँगन को
गीला कर-कर जाता होगा री;
परिमल के मिठास से भाराकुल,
यह वासन्ती बयार
उलझ-उलझ कर खोल-खोल देता होगा री
तेरा कच-सम्भार सुरभिमय।"

बाकी कविताओं में भी वैविध्य या नवीन प्रयोग का कोई उल्लेखनीय तत्त्व नहीं नजर आता पर बीस साल बाद के दूसरे संस्करण के 'पुनश्च' में नेमिचन्द्र जैन किंचित सभ्य शब्दों में ही सही, अज्ञेय के सारा श्रेय ले जाने की 'प्रवृत्ति' से खासी नाराज़गी दर्शाते हैं- 'तार सप्तक' के सम्पादक महोदय का हाथ उसके प्रकाशन में चाहे जितना रहा हो पर उसकी परिकल्पना उनकी नहीं थी और न उसमें संग्रहीत कवि ही मूलतः उनकी पसंद के कारण एकत्र हुए थे।' और " 'तार सप्तक' की स्थिति बाद के दोनों 'सप्तकों' से मौलिक रूप से भिन्न थी और वह किसी आन्दोलन या साहित्यिक संरक्षण वृत्ति का उपज नहीं था।" जाहिर है, नैमिचन्द्र जैन को 'संरक्षक' के रूप में अज्ञेय की प्रत्यक्ष-परोक्ष भूमिका से परहेज तो है ही, 'संरक्षण' की प्रवृत्ति से ही एलर्जी है। हम बाद में प्रकाश में आये तथ्यों से अब भलीभांति जानते हैं कि इस संग्रह की मूल परिकल्पना नेमिचन्द्र जैन की ही थी। दूसरे संस्करण में आयी कविता 'आज फिर जब तुम से सामना हुआ' इस मामले में उल्लेखनीय है कि यह पहले संस्करण की कविताओं से बिलकुल ही भिन्न अंदाज़ की किंचित प्रयोगधर्मी कविता है और कसे हुए शिल्प की भी है--

"कितने दिनों बाद आज फिर जब
तुम से सामना हुआ

उस भीड़ में अकस्मात
....
यह सब,
न जाने और क्या-क्या
मुझे याद आया,
और एक अपूर्व शांति से
परिपूर्ण हो गया मैं,
जब आज
अचानक ही भीड़ में
इतने दिनों बाद
तुम से यों सामना हो गया
ओ मेरे एकान्त।"

भारतभूषण अग्रवाल तार सप्तक में शामिल तीसरे कवि हैं और सबसे पहले अपने वक्तव्य से प्रभावित करते हैं-- "कर्म से पलायन ही मेरी कविताओं का स्पन्दन रहा।", "हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने के बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लड़ना होगा जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पनाविलासी बना छोड़ा है।" जैसी काव्य-स्थापनाओं या आत्मस्वीकृति के माध्यम से। वे अपनी प्रारंभिक कविताओं में तुकबंदी के आग्रह का भी ज़िक्र करते हैं। 'अहिंसा' कविता फिर उसी तुकांत शैली में किंचित हास्यास्पद कविता है तो 'फूटा प्रभात' कविता पर छायावादी शैली का प्रभाव स्पष्ट है--

"जागो जगती के सुप्त बाल।
पलकों की पंखुरियाँ खोलो, खोलो मधुकर के अलस बन्ध
दृग भर
समेट तो लो यह श्री, यह कान्ति
बही आती दिगन्त से यह छवि की सरिता अमन्द
झर-झर, झर-झर।"

प्रथम संस्करण की ऐसी सामान्य सी ही कविताओं के बाद भारतभूषण दूसरे संस्करण में 'पुनश्च' के तहत फिर काव्य-कर्म में आ रही तमाम मुश्किलों पर टिप्पणी करते चलते हैं-- "आज के कवि के सामने एक और भयंकर समस्या खड़ी हो गयी है उसका कवि-कर्म अतिरिक्त कर्म ही हो सकता है, एकमात्र कर्म नहीं। .....आज की जीवन पद्धित कवि को अपनी कला को माँजने-सँवारने और पालने-पोसने का कोई अवसर नहीं देती।" "कवि को जीवन--यापन के लिए तरह--तरह की कलाबाजियाँ करनी पड़ती हैं जिसके कारण उसकी अनुभूति सीमित और उसका व्यक्तित्व विभक्त हो जाता है।" जाहिर है, यह एक ख़ालिस मध्यवर्गीय कवि की कुंठा बोल रही है वर्ना कबीर तो सूत बुनने का कर्म कर परिवार पालते-पालते किस ऊँचाई का कवि-कर्म भी कर गये, हम सब जानते हैं। वैसे इस 'पुनश्च' के बाद आई भारतभूषण की एक कविता 'मैं और मेरा पिट्ठू', पुनश्च के तहत व्यक्त 'कर्म का द्वंद्व' को ही झलकाते हुए भी एक अच्छी कविता कही जा सकती है--

"एक दीखने वाली मेरी इस देह में
दो 'मैं' हैं
और एक मेरा पिट्ठू
मैं तो, खैर, मामूली सा क्लर्क हुँ
पर मेरा पिट्ठू ?
वह जीनियस है।"

चौथे कवि के रूप में प्रभाकर माचवे हैं जो अपने 'वक्तव्य' में कुछ चौंकानेवाली स्थापनाएँ देते हुए लिखते हैं-- "छायावाद हिस्टीरिया की भाँति हिन्दी-कविता का एक मानसिक रोग है।" "एक तरुणमना स्वस्थ कवि के लिए छायावाद का माध्यम स्थविर, स्त्रैण और जीर्ण जान पड़ता है।" "नये कवियों ने छायावाद तज कर प्रगतिवाद को अपनाया।" वक्तव्य का अंत करते-करते वे रक्षात्मक मुद्रा में आकर कह जाते हैं कि वे संग्रह की अपनी रचनाओं को उन-उन काव्य-दोषों से पूर्णतः अलिप्त होने का दावा नहीं करते। अब उनकी सम्मिलित कविताओं को देखें तो उदाहरणार्थ, 'निम्न मध्यवर्ग कविता' की शुरूआत ही

निम्न मध्यवर्ग की परेशानियों का संवेदनशील चित्रण करने के बजाय इस वर्ग की बेहद असंवेदनशील भर्त्सना से होती है-

"नोन-तेल-लकड़ी की फ़िक्र में लगे घुन से
मकड़ी के जाले से, कोल्हू के बैल से
मकाँ नहीं रहने को, फिर भी ये घुन से
गन्दे, अँधियारे और बदबू-भरे दड़बों में
जनते हैं बच्चे।"

माचवे महोदय छायावादी कविता को तो 'वक्तव्य' में जी भर कर कोस गये पर यह उनकी किस कोटि की प्रगतिवादी कविता है? इससे लाख दर्जे बेहतर तो कविता 'तोड़ती पत्थर' है! छायावादी कविता के शीर्ष कवि निराला की मेहनतकश स्त्री के संघर्ष को अद्‌भुत संवेदनशीलता से एक छोटी सी कविता चित्रित कर जाती है। वक्तव्य जारी करना एक बात है और सही मायनों में एक उत्कृष्ट कविता लिख जाना बिलकुल ही दूसरी बात। अंततः कवि की कविता ही उसके काव्य-व्यक्तित्व का कद तय करती है, और कुछ नहीं। दूसरे संस्करण का 'पुनश्च' आते-आते माचवे स्वीकार कर लेते हैं- "मैं मानता हूँ कि 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' (और अब शायद 'अभिनव कविता'?) के नाम पर बहुत बकवास छपती रहती है.....।" और, इस रक्षात्मक मुद्रा को शायद नाकाफी समझकर आगे उनका निवेदन है कि--"मेरी हिन्दी एक मराठी-भाषी की हिन्दी है।" परंतु मराठी-भाषी तो इस संग्रह में प्रथम कवि के रूप में प्रस्तुत मुक्तिबोध भी थे पर वे तो ऐसे किसी सुरक्षात्मक वक्तव्य की ज़रूरत नहीं समझते। माचवेजी की 'डरु संस्कृति' जैसी कविता तो वस्तुतः हास्यास्पद कविता का नमूना है, पता नहीं क्या सोचकर इस 'ऐतिहासिक' माने जाने वाले संग्रह में शामिल की गई।

पाँचवे कवि के रूप में प्रस्तुत गिरिजाकुमार माथुर 'वक्तव्य' में कविता लिखने की अपनी कला पर कुछ महत्त्वपूर्ण बयान देते हैं- "कविता के विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है।" (शायद 'शैली' की अपेक्षा टेकनीक शब्द उन्होंने बेहतर समझा।) "अभिव्यंजनात्मक शब्द-विन्यास वातावरण के रूप-भाव के अनुकूल नये बनाये हैं-- जैसे पतला नभ, सिमटी किरन, आदिम छाहें, घूमते स्वर आदि।" "ध्वनि-विधान में मेरे प्रयोग मुख्यतः स्वर-ध्वनियों के हैं। व्यंजन-ध्वनियों से उत्पादित संगीत को मैं कविता में संगीत नहीं मानता।" सम्मिलित कविताओं में 'टेकनीक' पर ध्यान ज्यादा देने की उनकी आदत झलकती भी है, यथा--

"बुझी रात का अभी अख़ीरी पहर नहीं उतरा है
दूरी के रेखा-छाहों सा पेड़ों ऊपर
ठण्डा-ठण्डा चाँद ठिठक कर मन्दा होता
नभ की लम्बी साया दूरी तक पड़ती है।"

अब ध्यान से देखें तो 'बुझी रात' का बिम्ब किसी के बेहूदा से बेहूदा ख्वाब में नहीं आयेगा, रात कोई बीड़ी--सिगरेट तो है नहीं, 'आख़िरी' के बजाय 'अख़ीरी' का प्रयोग अटपटा और अनावश्यक है और 'ठण्डा-ठण्डा' एक तो चाँद होगा नहीं, ऊपर से 'मन्दा होता' बेतुका प्रयोग है। और, अन्तिम 'नभ की लम्बी साया' अशुद्ध और नितान्त अटपटा प्रयोग है। तो, टेकनीक में नयापन दिखाने में अशुद्ध और अटपटी शब्दावली झोंकी जाये तो यह किस कोण से पाठकों-श्रोताओं को ग्राह्य लगेगी? दूसरी कविता 'पानी भरे हुए बादल' की पंक्तियाँ देखें--

"पानी-भरे हुए भारी बादल से डूबा आसमान है
ऊँचे गुम्बद, मीनारों, शिखरों के ऊपर।"

अब 'आसमान' किसी भी तरह से डूब नहीं सकता, आच्छादित ज़रूर हो सकता है। नये किस्म का चमत्कारिक बिम्ब झोकने के चक्कर में कविता शुरू में ही अविश्वसनीय बिम्ब पेश कर देती है। बीस साल बाद दूसरे संस्करण के 'पुनश्च' के तहत माथुर जी शुरुआत ही करते हैं कि-- "आधुनिक बोध की काव्य-धारा को प्रारम्भ हुए अब चौथाई शती बीत चुकी है, 'तार सप्तक' जिसकी प्रथम समवेत

अभिव्यक्ति था।" और "कलात्मक वैभव के एक ऐसे असीमित और अनावलोकित क्षेत्र का उद्घाटन हो चुका है जिसका पूर्वकालिक कवियों को भान ही नहीं था।" यह निपट बड़बोलापन है और सम्मिलित कविताएँ ही इस बड़बोलेपन को मुँह चिढ़ाती नज़र आती हैं। "इतनी बड़ी तात्त्विक क्रांति हिन्दी-कविता में कभी नहीं आयी थी" जैसे फ़तवे अपने 'पुनश्च' में पिरोकर माथुर अपनी स्थापना को मुंह के बल गिरने का रास्ता दिखा देते हैं क्योंकि जब पाठक 'तार सप्तक' की कविताओं को पढ़ेगा तो हल्के-फुल्के नये प्रयोगों के सिवा 'क्रांति' उसे कहीं दिखेगी नहीं और अच्छा पाठक सौ-दो सौ और ज्यादा अच्छी कविताएँ पढ़ चुकने के कारण तुलना स्वतः कर माथुर जी के काव्य-विवेक पर ही संदेह करने लगेगा। माथुर जी के 'पुनश्च' में लम्बी हाँककर 'तार सप्तक' के बारे में जैसे दावे किये गये हैं वैसे अन्य कवियों के वक्तव्य में नहीं दिखते तो यह उनका व्यक्तिगत विचलन ही कहा जा सकता है। 'पुनश्च' के बाद माथुर जी की संग्रहीत कविताओं में, जैसे उनके बड़बोलेपन को ही कविता में ढाल रही, 'नया कवि' जैसी कविताएँ हैं--

"जो अंधेरी रात में भभके अचानक
चमक से चकाचौंध भर दे
मैं निरन्तर पास आता अग्नि-ध्वज हूँ।
कड़कड़ाये रीढ़
बूढ़ी रूढ़ियों
झुर्रियाँ काँपें
धुनी अनुभूतियों की
उस नयी आवाज की उठती गरज हूँ।

गिरिजाकुमार माथुर बुरे नहीं हैं कवि के रूप में, कविता की 'टेकनीक' इत्यादि के बारे में सोचते भी हैं परंतु बड़बोलेपन का नतीजा यह होता है कि पाठक और सतर्क होकर, ध्यान से कविता पढ़ने चलेगा पर अपेक्षित 'तत्त्व' न पाकर सामान्य से ज्यादा निराश भी हो जायेगा। तथापि 'तार सप्तक' में संग्रहीत उनकी कविता 'दो पाटों' की दुनिया अच्छी विषयवस्तु और अभिव्यक्ति का अनूठा अंदाज लेकर चलती है--

"हर सुविधा
एक ठप्पेदार अजनबी उगाती है
हर व्यस्तता
और अधिक अकेला कर जाती है।"

पर अंत आते-आते अटपटापन घेर लेता है और कविता का प्रभाव क्षीण हो जाता है--

"हर आदमी में देवता है
और देवता बड़ा बोदा है
हर आदमी में जन्तु है
जो पिशाच से न थोड़ा है
हर देवतापन हमको नपुंसक बनाता है
हर पैशाचिक पशुत्व
नये जानवर बढ़ाता है
हम क्या करें--
देवता और राक्षस के क्रम से कैसे छूटें ।"

कविता में 'क्रांति' करने के चक्कर में माथुर जी को ध्यान ही न रहा कि आनेवाली पीढियाँ फ़तवों से अप्रभावित होकर जब ऐसी कविता पढ़ेंगी तो 'पैशाचिक पशुत्व', 'देवता बड़ा बोदा' है जैसे जुमलों को अटपटा और अनावश्यक ही मानेंगी। हाँ, कविता 'छाया मत छूना मन' अद्भुत रूप से गेय-गठन की है और पाठक की संवेदना का तार महीन रूप से झंकृत कर देने में, स्मृति में देर तक बने रहने में समर्थ है-

"छाया मत छूना
मन, होगा दुख दूना
जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी
छवियों की चित्र-गंध फैली मनभावनी
तन-सुगन्ध शेष रही, बीत गयी यामिनी
कुन्तल के फूलों की याद बनी चाँदनी।"

छठे कवि के रूप में सम्मिलित रामविलास शर्मा के बारे में अज्ञेय परिचय देते हुए ही बता देते हैं- "रामविलास जी पहले आलोचक हैं, फिर कवि।"

और, अपने 'वक्तव्य' में रामविलास जी अपनी पसंद के कवियों का उल्लेख करते हुए गँवई ठाठ के कवियों के प्रति अपना ख़ास अनुराग भी जता देते हैं। कविता 'कवि' में रामविलास जी मानो निराला की ही छवि उकेर रहे हैं--

"वह सहज विलम्बित मंथर गति जिस को निहार
गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार,
काले लहराते बाल देव-सा तन विशाल,
आर्यों का गर्वोन्नत, प्रशस्त, अविनीत भाल,

और, रामविलासजी के ही अनुसार किताब से प्रेरित कविता 'दाराशिकोह' उस अभागे राजकुमार की दयनीय स्थिति का चित्रण करती है--

"मस्तक मुकुटहीन, हाथ मणिबन्धहीन
कंठ में पराजय का हार एक द्युतिहीन;
पाँव में जंजीर और बन्दी पिता शाहजहाँ
सम्राट औरंगजेब दारा ऐसा भाग्यहीन!"

रामविलास जी की काव्याभिव्यक्ति की शैली और शब्दावली पर छायावादी प्रभाव स्पष्ट है। वे घोषित कवि नहीं हैं, न बहलाने का आग्रह है पर 'तार सप्तक' में शामिल उनकी कविताएँ अन्य शामिल कविताओं के मुकाबले कोई हल्की भी नहीं हैं। परतन्त्र देश के युवकों की त्रासदी को चित्रित करती कविता 'हड्डियों का ताप' तो अभिव्यक्ति की विशिष्ट शब्दावली के कारण ध्यान देने लायक है-

"कंकाल
हड्डियों के रक्तहीन मांसहीन कंकाल
मांसल बलिष्ठ नहीं भुजाएँ, रक्ताभा नहीं है कपोलों पर
परतन्त्र देश के युवक हैं। कहाँ है जीवन, कहाँ है चिरन्तन आत्मा?
हड्डियों का संघर्षण जीवन है
हड्डियों में बसा हुआ ताप ही
आत्मा है।"

'किसान कवि और उसका पुत्र' कविता में भारतीय किसान की त्रासदी का शब्द-चित्र तो है पर उसको लेकर गहन संवेदना नहीं झलकती है। बीस साल बाद के अपने 'पुनश्च' में रामविलास जी एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं-- "दूर की कौड़ी लाना काव्य-रचना नहीं, बौनों का बौद्धिक व्यायाम है।" और, निराला को अपना पथप्रदर्शक बताते हुए आगे कहते हैं- "सम्पूर्ण कविता के कलात्मक प्रभाव के लिए भावों-विचारों की परस्पर सम्बद्धता, मूर्तियों या प्रतीकों का आन्तरिक गठन और कृति के सभी अवयवों में तारतम्य स्थापित करने वाला शिल्प नितान्त आवश्यक है।"

सातवें और अन्तिम कवि के रूप में 'संकलनकर्ता और सम्पादक' अज्ञेय सम्मिलित हैं। वे अपने 'वक्तव्य' में कई बातें कविता और कविता के बारे में अपने दृष्टिकोण को लेकर कहते हैं-- "कविता ही कवि का परम वक्तव्य है।" "कविता का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है।" "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं। यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है।" "मैं स्वान्तः सुखाय नहीं लिखता।" "अभिव्यक्ति में एक ग्राहक या पाठक या श्रोता मैं अनिवार्य मानता हूँ।" "मेरी बात अनुग्रहपूर्वक आप सुन तो लीजिए पर मानिए मत -- मानिए उसी को, विश्वास उसी का कीजिए जो आपको मेरी कविता में मिले।" ये बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जाहिर है, अज्ञेय 'प्रयोग' को किसी विशिष्ट दौर के कवियों की बपौती नहीं मानते हैं और स्पष्ट शब्दों में, कवि का काव्य-कद उसकी कविता से ही नापने के आग्रही हैं। अब उनके 'वक्तव्य' के बाद उनकी सम्मिलित कविताओं को देखें तो शब्दों के प्रयोग को लेकर वे एक सतर्क और जिम्मेदार कवि नज़र आते हैं। 'शिशिर की राका-निशा' कविता से उदाहरण--

"निकटतम--
रीढ़ बंकिम किये, निश्चय किन्तु लोलुप
खड़ा वन्य-बिलार--

पीछे, गोयठों के गन्धमय अम्बार!
गा गया सब राजकवि, फिर राजपथ पर खो गया।
गा गया चरण, शरण फिर शूर को आ कर,
निरापद सो गया।"

या फिर 'चार का गजर' कविता की शुरुआत -

"चार का गजर कहीं खड़का
रात में उचट गयी नींद मेरी सहसा--
छोटे-छोटे, बिखरे से, शुभ्र अभ्र-खंडों बीच द्रूतपद
भागा जा रहा है चाँद :
जगा हूँ मैं एक स्वप्न देखता :"

अपने 'पुनश्च' में अज्ञेय अपने पुराने 'वक्तव्य' पर ही दृढ़ हैं-- "मुझे संतोष है कि बीस वर्ष पहले 'तार सप्तक' में अपने 'वक्तव्य' के रूप में जो कुछ लिखा था उसमें से कुछ भी वापस लेना आवश्यक नहीं जान पड़ता।" वे काव्य-कला में हाथ आजमाने चले लोगों की एक प्रमुख समस्या का भी उल्लेख करते हैं-- "आज भी मेरे सामने जो समस्या है और जिसका हल पा लेना मैं अपने कवि-जीवन की चरम उपलब्धि मानूँगा, वह अर्थवान शब्द की समस्या है। काव्य सबसे पहले शब्द है..." निश्चय ही, अज्ञेय कवि-कर्म को लेकर गम्भीर रूप से सोचने वाले और उसे गम्भीरता से लेनेवाले कवि के रूप में सामने आते हैं। संग्रह की अन्तिम कविता 'सवेरे उठा तो' बड़ी अच्छी शाब्दिक बुनावट की कविता है--

"सवेरे उठा तो धूप खिलकर छा गयी थी
और एक चिड़िया अभी-अभी गा गयी थी।
मैंने धूप से कहा : मुझे थोड़ी गरमाई दोगी-उधार?
चिड़िया से कहा : थोड़ी मिठास उधार दोगी?
....
सबसे उधार माँगा, सबने दिया।
यो मैं जिया और जीता हूँ
क्योंकि यही सब तो है जीवन--
गरमाई, मिठास....."

इस कविता में 'अर्थवान शब्द' का सही जगह पर और सही ढंग से प्रयोग, पाठक-श्रोता को बाँधे स्पष्ट दिखता है।

अब अंत में, 'तार सप्तक' के 1943 के प्रथम और 1963 के द्वितीय संस्करणों में शामिल कवियों और कविताओं पर इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में कुछ बातें एक समग्र पुनर्मूल्यांकन के रूप में कहना उचित होगा--

1) निश्चय ही, 'तार सप्तक' के रूप में कुछ कवियों की कविताएँ उनके 'वक्तव्य' और फिर 'पुनश्च' जोड़ते हुए एक संग्रह में प्रस्तुत करना एक अनोखी पहल थी। पर, जैसा कि कुछ कवियों ने खुद ही स्पष्ट किया, यह किसी एक 'स्कूल', 'शैली' या 'विचारधारा' के कवियों का जमावड़ा नहीं था, वे एक-दूसरे से पूर्वपरिचित ज़रूर थे।

2) 'तार सप्तका' में सम्मिलित कविताओं को कवियों ने खुद ही चुना था पर अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस संग्रह में एक भी कविता ऐसी नहीं है जिसे हिन्दी कविता के सार्वकालिक श्रेष्ठ नमूनों में स्थान दिया जाए, कुछ अच्छी कविताएँ ज़रूर हैं।

3) मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा और अज्ञेय के वक्तव्य कविता की विधा के बारे में उनकी गम्भीर सोच दर्शाते हैं, प्रभाकर माचवे का वक्तव्य बेतुके फ़तवों से भरा हुआ है और गिरिजाकुमार माथुर 'तार सप्तक' के महत्त्व के बारे में जो लम्बी-चौड़ी डींग हाँकते हैं उसका प्रमाण न उनकी सम्मिलित कविताओं में मिलता है न ही पूरे संग्रह में।

4) मुक्तिबोध के श्रेष्ठ और अलग ही किस्म के काव्य की थोड़ी सी झलक तो 'तार सप्तक' में सम्मिलित कविताओं में मिलती है पर, अन्य सम्मिलित कवियों की तरह ही, निर्विवाद रूप से स्थायी महत्त्व की उनकी कोई भी कविता यहाँ नहीं है।

5) काव्य में 'नवीन प्रयोग' करनेवाले कवियों को प्रस्तुत करनेवाले संग्रह के रूप में 'तार सप्तक' को स्वीकार नहीं किया जा सकता। कुछ कवियों पर छायावाद का प्रभाव बहुत स्पष्ट है और कुछ तो शब्दों

के मनमाने संस्करण पेश कर ('तात्विक क्रांति' का गिरिजाकुमार माथुर का दावा) अगर 'प्रयोग' का आग्रह कर रहे हैं तो इसे अटपटा और बेतुका प्रयोग ही कहा जा सकता है।

6) छायावादी दौर से आगे की कविता होने का दावा फिजूल है, छायावादी दौर के शीर्ष कवि निराला की ही कविताएँ 'तार सप्तक' की कविताओं पर बहुत भारी हैं और इक्कीसवीं सदी में भी ज्यादा महत्त्व रखती हैं। ध्यान देने की बात है कि 'संकलनकर्ता और सम्पादक' अज्ञेय ऐसा कोई दावा नहीं करते।

7) हिन्दी-कविता को एकाक्षी आलोचकों ने तमाम तरह के 'ठप्पों' में सीमित रखने का प्रयास दशकों से जारी रखा है, एक ईमानदार और कविता की गुणवत्ता पर ही केंद्रित आलोचना को उभरने नहीं दिया है। 'ठप्पामार आलोचना' इस संग्रह की कविताओं के मामले में खोपड़ी ही खुजलाती रह जायेगी क्योंकि 'तार सप्तक' पहले से परिचित कुछ कवियों की स्वयम् चुनकर दी गई कविताओं का ही संग्रह है, किसी 'वाद' या 'गुट' के ही कवियों की सामूहिक प्रस्तुति नहीं। वैसे भी, कोई भी कवि अपनी सारी कविताओं समेत किसी एक 'ठप्पे' के तहत नहीं समेटा जा सकता।

8) इस मामले में 'तार सप्तक' की तारीफ़ की जानी चाहिए कि सवक्तव्य सात कवियों की कविताओं की प्रस्तुति का ख़याल हुआ और फिर कार्यान्वित भी हुआ पर निराशा इस बात की है कि दोनों संस्करणों से एक भी ऐसी कविता नहीं निकली जिसे निस्संकोच हिन्दी की सर्वकालिक श्रेष्ठ कविताओं में स्थान दिया जा सके।

9) 'प्रयोग', जैसा अज्ञेय कहते ही हैं, हर काल के कवियों ने कविता में किया पर 'तार सप्तक' में मात्र प्रयोग के लिए प्रयोग करने को आतुर गिरिजाकुमार माथुर यह सबक छोड़ गये हैं (अनचाहे ही) कि कैसे प्रयोग कविता में नहीं करने चाहिए। किसी भी काल में कोई भी पाठक इस संग्रह को पढ़ेगा तो 'पतला नभ', 'बुझी रात', 'ठंडा-ठंडा चाँद' जैसे अतार्किक, अटपटे और अस्वाभाविक शब्दों को 'प्रयोग' के नाम पर कविता में पिरोना उसे खटकेगा ही। यह 'सबक' इस संग्रह का ध्येय नहीं था, जाहिर है, पर 'संकलनकर्ता और सम्पादक' द्वारा बेहतर प्रयोगधमर्मी कविताओं को स्थान देने से संग्रह 'नकारात्मक उपलब्धि' के इस दोष से मुक्त रहता।

590, डी.डी.ए फ्लैट्स,
पाकेट-1, सेक्टर-22, द्वारका,
नई दिल्ली-110077
मो. 9968334756

●

जब यह साफ हो कि लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है, तो लक्ष्यों में फेरबदल न करें, बल्कि अपने प्रयासों में बदलाव करें। - **कंफ्यूशियस**

दुनिया बहुत कष्ट सहती है, बुरे लोगों की हिंसा के कारण नहीं बल्कि अच्छे लोगों के मौन के कारण। - **नेपोलियन**

अच्छे विचारों को स्वतः ही अपनाया नहीं जा सकता। इन्हें पराक्रमयुक्त धैर्य के साथ व्यवहार में लाया जाना चाहिए। - **हायमैन**

मोहन राकेश की कहानियों में मध्यवर्गीय चेतना

डा.वासुदेवन 'शेष'

शोध सार- नये कहानीकारों में विशिष्टत्रयी (कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश) ने कहानी को नया मोड़ देने तथा नई परम्परा स्थापित करने में विशेष योगदान दिया है। राजेन्द्र यादव की कहानियों में जहाँ नई कहानी का प्रारम्भ माना जाता है, वहीं इसके मूल विकास के रूप में कमलेश्वर और मोहन राकेश की कहानियाँ अपूर्व देन के रूप में स्वीकार की जाती है। मोहन राकेश की बहुमुखी (मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, वैयक्तिक, यथार्थोन्मुखी, व्यंग्यात्मक) कहानियों ने कहानी साहित्य में श्रीवृद्धि की है। इनकी लेखनी से प्रस्फुटित कहानी संग्रह 'इंसान का खण्डहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिंदगी', 'फौलाद का आकाश', 'वारिस' आदि हैं। ये कहानी संग्रह चार भागों में आये हैं-- 'आज के साये', 'मिले जुले चेहरे', 'पहचान' और 'एक-एक दुनिया' उन्होंने आधुनिक विषयों, आधुनिक समस्याओं पर आधुनिक ढंग से अपनी कहानियों में प्रकाश डाला है। आधुनिक युग के परिपार्श्व में पूर्णतया ढलकर इनकी कहानियाँ जीवन में व्याप्त संघर्ष को आत्मसात कर लेती हैं। इनकी कहानियाँ इतनी सजीव हैं कि जीवन का कोई न कोई पक्ष पूर्णतया प्रकाशित होकर उपस्थित होता है। विशेष प्रशंसनीय बात यह है कि यह पक्ष बहुत साधारण ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है। जटिल कथानक इनको रुचिकर नहीं लगते। मोहन राकेश ने इन कहानियों में पंजाब, दिल्ली और बम्बई जैसे शहरों के जीवन को लिया है। भारत विभाजन की घटनाएँ भी उभारी हैं तथा मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग को अपनी कहानियों का आधार बनाया है। **संकेत शब्द-** मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, आत्मसात, आधुनिक समस्याएँ, भारत विभाजन, मानसिक अन्तर्द्वंद्व !

मोहन राकेश की कहानियों में अंतर्मुखी भावनाओं की प्रबलता है। इनके पात्र सामाजिक संदर्भ से जूझते हुए पहले तो वैयक्तिक हो जाते हैं, फिर नितांत अन्तर्मुखी हो जाते हैं और फिर अपने अकेलेपन में घुटते हैं। अन्तर्द्वंद्व की यातनाएं सहते हैं, आर्थिक एवं मानसिक दृष्टि से तो स्वतंत्र हो जाते हैं परन्तु सुखी नहीं हो पाते हैं।

वैयक्तिक आग्रहों से युक्त होकर मोहन राकेश जो भी कुछ कहना चाहते हैं उसमें आस्था, आकुलता, व्याकुलता, संकल्प, त्याग आदि भावनाएँ संजोएं रहते हैं। मोहन राकेश के अपनी कहानियों के पात्रों को यथार्थ परिवेश के अनुकूल ढाला है। इनके पात्र निम्न तथा मध्यवर्ग से संबंधित हैं। इनके पात्रों में जाति तथा वर्ग वैषम्य की स्थिति प्रमुख है। उनकी इस व्यक्तिकता

से सामाजिकता को ठेस नहीं पहुँचती है, क्योंकि पात्रों की समस्याओं का आधार सामाजिक है। "व्यक्ति यथार्थ परिवेश से असम्पृक्त होकर निर्जीव हो जाता है और जातीय विशेषताओं एवं संस्कारच्युत होकर अजनबी बन जाता है। इसलिए मोहन राकेश एक व्यापक दृष्टि चरित्र चित्रण के संबंध में अपनाते हैं और पात्रों की वैयक्तिक विशेषताओं को प्रकाशित करने का लक्ष्य एवं अनुभूति के होते हुए भी समष्टिगत आधारों की उपेक्षा नहीं करते।"[1]

नये कहानीकारों ने व्यक्ति और समाज को लेकर एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है कि हम पूरे विस्तार से इन दोनों (व्यक्ति और समाज) को समझ पाते हैं। यही कारण है कि मोहन राकेश की कहानियाँ हमारे आधुनिक जीवन के वातावरण, अनुभूतियों और जीवन के संघर्ष से संबंधित हैं। इसके लिए मोहन राकेश स्वयं को परम्पराओं से भी काट लेते हैं। जीवन में व्याप्त संघर्ष की अभिव्यक्ति ही इनका श्रेय प्रेय है। वैयक्तिक चेतनापरक यथार्थ चित्रण से संबंधित कहानियों में 'उसकी रोटी', 'नये बादल', 'परमात्मा का कुत्ता', 'हक हलाल', 'एक और जिंदगी' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

'एक और जिंदगी' कहानी में यथार्थ अपने चरमोत्कर्ष पर उभरकर आया है। अस्मिता की भावना के कारण कितना बिखराव आ गया है। एक कथन है - "जब हम अपने ही भविष्य के बारे में नहीं सोच सके तो इसके बारे में क्या सोचेंगे? इसे आपको सौंप दूँ? इतनी मूर्ख नहीं हूँ। अच्छा है तुम बच्चे की बात भूल जाओ और नये सिरे से अपनी जिंदगी शुरू करने की कोशिश करो। मन में इतना ही सोच लेना होगा कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गई थी ।" तलाक जैसी मान्यताओं ने भी मनुष्य को सफलता नहीं दी। बीना और प्रकाश विवाह करने के लिए विवाह तो कर लेते हैं परन्तु अहं उनको एक सूत्र में बाँध नहीं पाता। परिणामतः तलाक हो जाता है। कानून उनके बेटे 'पलाश' को उसकी मां बीना को सौंप देता है। जिंदगी अकेले सरलता से नहीं कटती है। इसलिए प्रकाश निर्मला से विवाह कर लेता है। दुर्भायवश निर्मला हिस्टीरिया के रोग से ग्रस्त है जिसके कारण उसका स्वभाव विकृत है। उससे तंग आकर प्रकाश कश्मीर चला जाता है। भाग्य की बिंडबना ही है कि वहां उसे उसकी पहली पत्नी बीना बौर बेटा पलाश मिलते हैं। पलाश प्रकाश के पास खेलने आता रहता है परन्तु बीना अपने अंह को सम्भाले रखती है- यदि एक दो बार लाने ले जाने आती भी है तो भी नितांत आत्ममुखी और तटस्थ बनी रहती है । बीना जब पलाश को लेकर कश्मीर से लौटती है तो प्रकाश अत्यधिक उद्विग्न होकर शराब पी लेता है। नशे में धुत्त पगडंडी पकड़े जब वह अपने कमरे में लौटता है तो उसका पीछा जैसे दो नन्हें पांव करते हैं। उसे ऐसा प्रतीत होता है परन्तु वह कुत्ता होता है। मनुष्य जो चाहता है वह उसे नहीं मिलता, इस सत्य से किसी को भी इंकार नहीं है। यदि प्रकाश एक जिंदगी नहीं बसा सका तो उसने दूसरी बसानी चाही परन्तु उसमें भी वह सफल नहीं हुआ। कुत्ते का सा निराश जीवन प्रकाश को जीना ही पड़ता है। प्रकाश और बीना के माध्यम से मोहन राकेश नर नारी के विषम संबंधों को ही चित्रित करना चाहते हैं। आज के नर-नारी वैयक्तिक आग्रहों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते और यही इस कहानी का मुख्य आधार है।

मोहन राकेश की पांचवें माले का फ्लैट कहानी में युवक-युवतियों की वैयक्तिक चेतना का परिचय दिया गया है जो अपने लिए भावात्मक मैच चुनना अच्छी तरह जानते हैं। ये युवतियाँ भोली-भाली नहीं हैं, पूर्णतया आत्म जागरूक हैं। बंबई में कहानी के नायक अविनाश के मित्र शर्मा के घर सरला और प्रमिला दो युवतियाँ ठहरी हुई हैं। मित्र होने के नाते शर्मा अविनाश को दोनों लड़कियों में से कोई एक पसन्द करने को कहता है। बीस बाईस दिन तक निरंतर सम्पर्क में आने के कारण अविनाश छोटी बहन प्रमिला पर मुग्ध हो जाता है जो उससे पिक्चर चलने का आग्रह करती है

किंतु पैसों के अभाव में अविनाश दोनों लडकियों को पिक्चर दिखाने न ले जाकर अपने घर पांचवें माले के फ्लैट ले आता है। अविनाश का पांचवें माले का अस्त व्यस्त फ्लैट प्रमिला को रूष्ट एंव हतोत्साहित कर देता है और सरला नेत्रों से व्यंग्य बाण कसने लगती है। प्रेम एवं आकर्षण भी विचित्र होता है कि अविनाश पैसों की व्यवस्था करता है। अपने कमरे को सजाता है और दोनों बहनों को पिक्चर के लिए आमंत्रित करता है, परन्तु समय चूक जाता है और दोनों बहिनें वहाँ से जा चुकी होती हैं। सात वर्ष बाद दोनों बहनें अविनाश से मिलती हैं, उसके मकान तथा विवाह की बात करती है परन्तु वह संयोग स्थायी नहीं रह पाता। बम्बई के लोग कितने वैयक्तिक होते हैं जो स्थिर प्रेम करना नहीं जानते हैं। कैसी विडम्बना है कि अविनाश की आर्थिक स्थिति उसे प्रमिला जैसी युवती से बांध नहीं सकती, "मुड़कर पीछे न देखता, तो न भी देखता, पर अचानक यों ही उत्सुकतावश कि जाने अपने को किसी ने पुकारा हो, घुमकर देख लिया, आवाज देने के बाद जहां की तहां रूक गयी थी। उसके बाद उसे पहचानने और उस तक पहुँचने की सारी जिम्मेदारी जैसे मेरे ऊपर हो। पास पहुँचने पर भी अपनी जगह से एक दम नहीं हिली। दूर था तो बंद होंठों से मुस्करा रही थी। पास पहुँचा तो खूले होंठे से मुस्कराने लगी बस। भौंहों पर आई ब्रो पेंसिल की गहराई को चमकाती हुई बोली पहचाना नहीं। मैं उसका नाम याद करने की कोशिश कर रहा था बहुत दिन वह नाम जबान पर रहा था।"[2]

मोहन राकेश की कहानी 'नये बादल' में धर्मशाला का वास्तविक चित्रण हुआ है। चौकीदार किस प्रकार किराये पर कमरे देने के लिए अपने मन में द्वन्द्व पालता है। एक एक अठन्नी के पीछे उसका क्या भाव रहता है, चौधरी किस प्रकार अपरिचित युवकों और युवती के बारे में जानने के लिए छानबीन करता है परंतु चौकीदार उसके किसी भी प्रश्न का प्रत्युत्तर साफ साफ नहीं देता। उसका उत्तर उसके कार्य से सम्बद्ध है जिससे उसकी वास्तविक स्थिति उदभासित होती है-- "मैं धर्मशाला की चौकीदारी करता हूँ जी, यहाँ आने वालों के धर्म ईमान की चौकीदारी नहीं करता। मुझे यह पता है कि कौन भला क्या है और कौन कैसा है, अभी चार नम्बर वाले कह रहे थे कि रात कोई चोर उनके कमारे में आया था और दियासलाई जलाकर इधर उधर देख रहा था, मेरा काम आप लोगों को कमरे दे देना है, बस और कुछ नहीं। यहाँ निम्नवर्गीय चौकीदार की निरीह स्थिति का वास्तविक चित्रण हुआ है।

'जख्म' नामक कहानी में नारी और पुरुष का अहं दोनों के विवाह सूत्र में विश्रृंखलता उत्पन्न करता है। पुरुष स्त्री से कहता है- "तुम्हारा ख्याल है मैं नौकरी छूटने की वजह से यह बात कर रहा हूँ? वह अपनी आँखें अब और पास ले आया। तुम समझते हो कि इसी वजह से कल मैं तुमसे चिपका रहना चाहता था?... पर खातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूँ। खाता मैं कभी किसी से नहीं। और यह भी विश्वास रखो कि मुझे अभी बीस साल और जीना है कम से कम बीस साल।"[3]

'ग्लास टैंक' में काव्य पुरुष को वरण न कर पाने की पीड़ा से दाम्पत्य जीवन कटुता से भर गया है। इसमें ग्लास टैंक में रखी हुई मछलियों को दिखाते हुए शोभा अपनी ऑटी से कहती, "देख, यह ओरिण्डा है, यह फैन टेल है। साल में एक बार, बसन्त में ये अंडे देती है। कुल दो साल की इनकी जिंदगी होती है। हवा इन्हें एरिएटर से दी जाती है। पानी का टेम्परेचर पचास से साठ डिग्री फैंरनहाइट के बीच रखना होता है। खाने को इन्हें ड्राइफूड देते हैं, ब्रेड भी खा लेती हैं। नीचे समुद्री घास इसलिऐ बिछाई जाती है कि .....।[4]

'परमात्मा का कुत्ता' नामक कहानी में शहरी जीवन की कृत्रिमता, बाह्य आडम्बर, को बड़ी गहराई से अभिव्यक्त किया है- "एक तुम्हीं नहीं, यहाँ तुम सब-के-सब कुत्ते हैं, और मैं भी कुत्ता हूँ, फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो हम लोगों

की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ। उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ, और उसकी तरफ से भौंकता हूँ। उसका घर इंसाफ का घर है। मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ। तुम सब उसके इंसाफ व दौलत के लुटेरे हो। तुम पर भौंकना मेरा फर्ज है, मेरे मालिक का फरमान है। मेरा तुमसे बैर है। कुत्ते का बैरी कुत्ता होता है। तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ । मैं अकेला हूँ, इसीलिए तुम सब मिलकर मुझे मारो, मुझे यहाँ से निकाल दो। लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूँगा। तुम मेरा भौंकना बंद नहीं कर सकते। मेरे अंदर मेरे मालिक का नूर है, मेरे वाहेगुरू का तेज है। मुझे जहाँ बंद कर दोगे, मैं वहाँ भौंकूँगा, और भौंक-भौंककर तुम सबके कान फाड़ दूंगा। साले आदमी के कुत्ते, जूठी हड्डी पर मरने वाले कुत्ते, दुम हिला हिलाकर जीने वाले कुत्ते ।"[5] इस प्रकार वह आदमी कमिश्नर कार्यालय के कर्मी से न्याय की गुहार लगाता है। कहानी में शहरी आडम्बर और घूसखोरी का जिक्र हुआ है। जो आज भी समाज में प्रचलित है। 'फौलाद का आकाश' कहानी में धन इतना आडे आता है कि दाम्पत्य जीवन जड़ हो जाता है। 'सेफटी पिन कहानी में वैवाहिक जीवन इतना असन्तुष्ट है कि पर-गमन की प्रवृत्ति जन्म ले लेती है। मोहन राकेश की कहानियों में ये प्रेम के नये मानदंड हैं जो रूढ़ियों को तोड़कर जीने के नये धरातल बनाते हैं।

'वासना की छाया में' एक बूढ़े सरदार की कहानी है। इसमें उसका किसी प्रकार की नारी को घर में रखने और अतृप्त वासना की पूर्ति का आग्रह दिखाया है। "उसकी आँखों में भूखी बिल्ली की सी जलन दिखायी दी। उनके होठ बूढ़ी वासना की लार से गीले हो रहे थे मुझे लगा कि वासना का लार चू-चूकर जम गया है और इंसान के आकार में धरती पर रेंग रहा है।' आज चरित्रहीनता की परिभाषा बदल गयी है। परिणामतः किसी को भी चरित्रहीन नहीं कहा जा सकता। मोहन राकेश की रोजगार कहानी में बंबई के सामाजिक जीवन की एक झाँकी दी गयी है। आर्थिक परिथितिवश एक लड़की चरित्रहीन हो जाती है तथा अनाचारयुक्त जीवन व्यतीत करती है और अपने चरित्रहीन आलसी भाई को पालती है। "मिसेज एडवर्डस गुस्से में सब कुछ भूल गयीं। तू शरम से डूब नहीं मरता? बहन के पाप की कमाई से रोटी खाता है और मेरे सामने आँखें तरेरता है? थू है तेरे जैसे आदमी। थू.....थू...।"

मोहन राकेश का शैली वैविध्य उनके कथ्य - वैविध्य की तरह ही अनुपम बन पड़ा है। जैसे 'जानवर और जानवर' कहानी में व्यंग्य "बेबी अब पाल के घुटने से अपनी नाक रगड़ रहा था। पाल ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा 'नाटी चाइल्ड'। ऐसी भी क्या शरारत कि इंसान एटिकेट तक भूल जाए कहाँ पादरी की बिस्कुट और सेंडविच खाकर पली हुई कुतिया और कहां बेचारी बेबी।' 'एक और जिंदगी', कहानी में अंर्तद्वद्व "जैसे जड़ता के क्षण में अवचेतन की गहराई में डूबा हुआ कोई विचार एकाएक चेतना की सतह पर कौंध गया हो।" मिस पाल कहानी में आत्मकथात्मक "मुझे लगता है मैं खामखाह अपनी जिंदगी बरबाद कर रही हूँ मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की जिंदगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है? सुबह उठती हूँ दफतर जाती हूँ। वहाँ सात आठ घण्टे खराब करके घर आती हूँ। खाना खाती हूँ और सो जाती हूँ। यह सारा काम सारा सिलसिला मुझे बेमानी लगता है।" 'मलबे का आदमी' कहानी में वर्णनात्मक शैली "बाजार बांसा अमृतसर का एक उजड़ा सा बाजार है। जहाँ विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहाँ ज्यादातर बांसों और शहतीरों की ही दुकाने थी जो सबकी सब एके ही आग में जल गयी थी " मोहन राकेश की शैली प्रसाद गुण सम्पन्न है। अनुभूति और अभिव्यक्ति में अपूर्व सामंजस्य है। इनकी कहानियों में कलाकार की निष्ठा, सामाजिक कार्यकर्त्ता का दायित्व, वैयक्तिक हित चिंतन का मनोविज्ञान सब कुछ अपनी पूर्ण

उत्कृष्ठता पर प्राप्त होता है।

नई कहानी में रूपकात्मकता, सांकेतिकता एवं प्रतीकात्मकता का ऐसा सम्मिश्रण सा हो गया है कि इसका विभेदीकरण अर्थात रूपकात्मकता कहाँ है, सांकेतिकता कहाँ और प्रतीकात्मकता कहाँ है स्पष्ट नहीं हो पाता। मोहन राकेश की कहानियों में भी तीनों शैलियाँ पायी जाती है। परन्तु इन तीनों का भेद समझ में आ जाता है, जिसे उन्होंने अपने कथन में अभिव्यक्त किया है कि कुछ लोगों ने कहानी के अन्तर्गत रूपकात्मक प्रयोगों को ही कहानी की सांकेतिकता मान लिया है और उसी आधार पर आज की हिंदी कहानी की सांकेतिक उपलब्धियों का ब्यौरा प्रस्तुत किया है परन्तु एकात्कमता कहानी की सांकेतिकता का एक रूप है। यह रूपकात्मकता बहुत दूर तक ले आयी जाए, तो पहले की तुलनात्मक अलंकारों उपमाएं उत्प्रेज्ञा आदि की तरह अखरने भी लगती हैं। - इसीलिए कहानी की सहज सांकेतिकता, रूपकात्मक सांकेतिकता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"

निष्कर्ष - हम यह कह सकते हैं कि मोहन राकेश अपने आप में उत्कृष्ठ कहानीकार हैं। एक ओर ये यशपाल और उपेन्द्रनाथ अश्क की परम्परा से जुड़े हैं तो दूसरी ओर नयी कहानी को सजाने संवारने तथा विकसित करने में सतत प्रयत्नशील हैं। विषय वैविध्य के बीचोंबीच झांकता, इनका अपना व्यक्तित्व जैसे मनोवैज्ञानिक कड़ियां सुलझाता है। प्रवाहमयी भाषा में लिखी नयी कहानियाँ पाठक के मन को सहज ही प्रभावित करती हैं। मुहावरेदार भाषा में उर्दू और अंग्रेजी के शब्द स्वतः ही प्रयुक्त हो गये हैं। भाषा पात्र तथा वातारण के अनुकूल है। छोटे छोटे वाक्यों में पुष्ट होते वैयक्तिक आग्रह स्वाभाविक जान पड़ते हैं। इनकी कहानियों में बोधगम्य भाषा प्रयुक्त हुई है। जिसने इनकी कहानियों की शैली को और भी स्वाभाविक बना दिया है।

मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में वैयक्तिक चेतना को बहुत ही उत्कृष्ठता से उभारा है। मशीनी युग की कल-कल में भी उनकी कहानियाँ सुनी जा सकती हैं। इस कोलाहल में जीवन कितना बिखर जाता है, टूट जाता है, सारहीन हो जाता है, कोमल भावनाएं कूच कर जाती हैं। इन सबका अच्छा चित्रण किया गया है । उकताहट, निर्ममता, निसंगता, तटस्थता तथा निष्क्रियता आदि हमें बिखरे जीवन से ही मिली है। कोमलता, सुकुमारता एवं माधुर्य आज के आत्मपरक मनुष्य में कहां मिलेंगे। इन सबका तो उसकी वैयक्तिक चेतना ने ह्रास कर दिया है। मोहन राकेश ने विविध विषय उठाकर विभिन्न प्रकार से आधुनिक युग बोध का यथातथ्य चित्रण किया है। बुद्धिवाद, नग्न यथार्यवाद इनकी कहानियों में सर्वत्र व्याप्त है। इसी से अपने आप में इनकी कहानियाँ उत्कृष्ट कोटि की कहानियाँ हैं।

संदर्भ

1. डॉ सुरेश सिंहा- हिंदी कहानी उद्धव और विकास नवीन परिवेश : नये आयाम (मोहन राकेश) पृ.सं 581। **2.** मोहन राकेश (पांचवें माले का फ्लैट--कहानी) मेरी प्रिय कहानियाँ, प्रकाशकः राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली--110006, संस्करण वर्ष 2013, पृष्ठ से- 10-11। **3.** मोहन राकेशः (ज़ख़्म कहानी), मेरी प्रिय कहानियाँ, प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स) कश्मीरी गेट, नई दिल्ली-110006 संस्करण वर्ष 2013, पृष्ठ संख्या-119। **4.** मोहन राकेश (ग्लास टैंक कहानी), मेरी प्रिय कहानियाँ, प्रकाशक-राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली-110006 संस्करण वर्ष 2013, पृष्ठ -15। **5.** मोहन राकेश (परमात्मा का कुत्ता-कहानी) प्रतिनिधि कहानियाँ प्रकाशक - जयभारती प्रकाशन, माया प्रेस रोड, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद-211003 संस्करण वर्ष 2007, पृष्ठ संख्या-97। **6.** मेरी प्रिय कहानियाँ- मोहन राकेश- प्रकाशक अशोक प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली- 110006 वर्ष 1993।

चेन्नई-600 005

चलभाष-94441 70451

●

ममता कालिया की कहानियों में सामाजिक-राजनीतिक सरोकार

कनकलता कुमारी

प्रस्तावना : साहित्य केवल आनंद की अनुभूति का साधन नहीं होता, उससे कहीं अधिक समाज को बदलने का साधन होता है। यही साहित्य की सबसे बड़ी भूमिका और सार्थकता है। वास्तविक अर्थों में साहित्य मनुष्यता की पाठशाला है। इसलिए साहित्य का असली काम समाज को अमानवीयताओं के विरुद्ध संवेदनशील और जागरूक बनाना अर्थात समाज को मानवीय बनाना है। साहित्य से यह अपेक्षित है कि वह सभी प्रकार की विषमताओं, अन्याय, शोषण और विसंगतियों से मनुष्य की मुक्ति का आहवान करे।[1] इस दृष्टि से ममता कालिया हिन्दी साहित्य जगत में महिला लेखन का एक सशक्त नाम है। **मूल शब्द--** सरोकार, संघर्ष, सामाजिक विसंगति, भ्रष्टाचार,

भूमिका : ममता कालिया केवल कहानीकार ही नहीं बल्कि उपन्यासकार और निबंधकार के रूप में भी चर्चित रही हैं। उनकी कहानियों में जीवन के यथार्थ का गहन चित्रण मिलता है। विशेषकर स्त्री-जीवन, मध्यमवर्गीय संघर्ष, सामाजिक विसंगतियाँ और राजनीतिक भ्रष्टाचार उनके लेखन के प्रमुख विषय रहे हैं। कालिया जी की कहानियों में पाठक को यथार्थ की तीखी झलक और व्यंग्यात्मक शैली का समन्वय दिखाई देता है। आधुनिक काल के यथार्थवादी साहित्यकारों में ममता कालिया का अपना एक विशेष स्थान है। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक जीवन में एक बदलाव आना शुरू हुआ और यह बदलाव समकालीन साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है। इसी बदलाव की प्रक्रिया से प्रभावित होकर समकालीन कहानीकारों ने मानव जीवन के विभिन्न आयामों का अवलोकन किया और उनमें आ रहे रोजमर्रा के बदलाव को अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत भी किया। इन कहानीकारों ने सामाजिक विसंगतियों, व्यवस्था के अंतर्विरोध तथा पूंजीवादी समाज पर भी तेज-तर्रार प्रहार किया। आज की कहानियाँ वास्तव में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विसंगतियों और विद्रूपताओं पर अनेकानेक सटीक टिप्पणियां नजर आती हैं। आज की बदलती हुई स्थितियों का आत्मीय संबंधों एवं रिश्तों पर खास प्रभाव पड़ा है।

1. सामाजिक सरोकार

ममता कालिया की कहानियों में सामाजिक और राजनीतिक सरोकार की गहराई देखी जा सकती है। उनकी रचनाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि वे समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर करने में भी सक्षम हैं। कालिया जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक असमानता, आम आदमी का दर्द, अकेलापन, निराशा, कुंठा, महिलाओं की स्थिति, शहरीकरण के प्रभाव, आर्थिक विपन्नता, राजनीतिक भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग जैसे गंभीर विषयों को उठाया है। उनकी रचनाएँ समाज के हाशिये पर खड़े लोगों की पीड़ा को प्रतिबिंबित करती हैं, साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आम आदमी की निराशा को व्यक्त करती हैं।

ममता कालिया की कहानियों में सामाजिक असमानता से उत्पन्न संवेदना देखने को मिलती है क्योंकि कालिया जी जहाँ एक ओर कहानियों में मानवीय अस्तित्व को स्वतंत्र सत्ता एवं उसकी महत्ता का समर्थन करती हैं, वहीं समाज की वे समस्याएँ, जिनको स्वयं मानव ने पैदा किया है, निष्पक्ष एवं तीखी आलोचना भी करती हैं। इनकी कहानी 'आपकी छोटी लड़की' में इन्होंने भारतीय समाज और परिवार के अंदर होने वाले भेद-भाव को बखूबी दर्शाया है। "टुनिया, जरा भागकर चिट्ठी डाल आ।" "मैंने गैस पर दूध चढ़ाया है। तू पास खड़ी रह टुन्नो जब दूध उफनने लगे तब तू गैस बन्द कर देना।" दिन-भर दौड़ती है टुनिया। स्कूल से आकर पढ़ाई करती है, थोड़ा-बहुत खाना खाती है और इसके साथ ही शुरू हो जाता है काम-पर-काम-पर-काम। घर के टेढ़े-से-टेढ़े और सीधे-से-सीधे काम सब टुनिया के जिम्मे।[2]

स्त्री जीवन की समस्याएँ - उनकी कहानियों में स्त्री केवल गृहिणी नहीं बल्कि संघर्षशील, आत्मनिर्भर और विद्रोही रूप में भी दिखती है। वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्याय से टकराती है। हम **'मुखौटा'** कहानी संग्रह की कहानी **'चिरकुमारी'** को देखते हैं तो हमें समाज की विडंबनाएं देखने को मिलती हैं। इसकी नायिका दिशा अपने स्वतंत्र विचारों द्वारा अस्तित्व को तलाश रही है। 'चिरकुमारी' कहानी में ऐसी नारी का चित्रण दिखाई देता है जो स्वतंत्र विचारों वाली है, वो विवाहित जीवन जीने के हक में नहीं है। वह शादी के नाम पर अपनी जिंदगी को खोना नहीं चाहती। "दिशा के घर में हर वक्त रौनक रहती। उसे बड़ी हैरानी होती जब आनेवाले कहते हैं, कैसे रह लेती हो अकेली, दिल नहीं घबराता है तुम्हारा, शादीशुदा लोग समझते हैं 35 की उम्र इतनी ज्यादा भी नहीं होती। हमें पता है ये कोई अच्छा सा लड़का। हैरानी की बात यह कि 25-30 साल के विवाहित जीवन के बाद भी पत्नियों में असुरक्षा की भावना थी। दिशा को तकरीबन इतने ही साल हो गए शादीशुदा लोगों के रिश्ते परखते"।[3]

मध्यमवर्गीय जीवन - आर्थिक संकट, रोज़गार की असुरक्षा और पारिवारिक जटिलताएँ उनकी कहानियों का मूल स्वर है। 'अलमारी' कहानी में लड़की के माता-पिता की मनोदशा के बारे में बताया गया है। जब एक लड़की का रिश्ता तय होता है तब लड़की के माता-पिता दहेज एकत्रित करने में लग जाते हैं। **'बोलने वाली औरत'--** यह कहानी महिला सशक्तीकरण के साथ-साथ राजनीतिक चेतना को भी दर्शाती है। समाज में महिलाओं की स्थिति और उनके दमन के पीछे की राजनीतिक और सामाजिक संरचना को उजागर किया गया है। ममता कालिया की कहानी **'बोलने वाली औरत'** एक सशक्त और प्रासंगिक कथा है जो महिलाओं की आवाज, उनकी इच्छाओं और समाज में उनकी स्थिति को उजागर करती है। 'बोलने वाली औरत' कहानी एक ऐसी महिला की है जो समाज के नियमों और परंपराओं के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाती है। वह अपनी पहचान बनाने और अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए संघर्ष करती है। कहानी का मुख्य पात्र एक विवाहित महिला है, जो अपने जीवन में कई कठिनाइयों और चुनौतियों

का सामना करती है।

सामाजिक पाखंड और विसंगति - समाज में व्याप्त दिखावे, भेद-भाव और नैतिक गिरावट पर उन्होंने व्यंग्य किया है। कहानी 'मुखौटा' में समाज में व्याप्त विशेष रूप से छात्र वर्ग में आरक्षण जैसे मुद्दों को उजागर किया है। ममता कालिया की नवीनतम और चर्चित कहानियों का संकलन है 'मुखौटा'। इन कहानियों में रचनाकार ने अपने समय और समाज को परिभाषित करने का भरपूर सृजनात्मक जोखिम उठाया है। संग्रह की हर कहानी में ममता कालिया की प्रयोगधर्मिता और संघर्ष चेतना बोलती है। शीर्षक कहानी 'मुखौटा' में छात्र वर्ग में आरक्षण जैसे मुद्दे का यथार्थ तथा रोशनी की मार में दलित चेतना का उभार अपने पूरे तेवर के साथ मौजूद है। कहानी 'बीमारी' कुछ अंश इस प्रकार हैं-- मैंने उसकी पत्नी से कहा, 'रसोई में डबल रोटी, मक्खन और जैम रखा है। आप चाहें तो ले सकती हैं'! उसने कहा, 'अचार हो तो बता दो। मठरियाँ हैंडबैग में पड़ी हैं।' मैंने कहा, 'मुझे खुद अचार खाए पाँच-एक साल हो गए हैं।' उस दिन मैं सारे समय उसे खाना बनाते और परेशान होते देखती रही। मुझे सिर्फ यह अफसोस हो रहा था कि शादी के बाद से लेकर अब तक वह वैसी ही रही वैसी ही बे-सलीका और बे-अक्ल। बल्कि भाई भी उसके साथ-साथ उसी अनुपात में बेवकूफ होता जा रहा था। वह उसके साथ रसोई में ऐसे लगा था जैसे पत्नी ऑपरेशन कर रही हो।"[4] इस कहानी के माध्यम से कहानीकार समाज में व्याप्त उस आंतरिक पहलू को उजागर करती है कि रिश्ते कितने बनावटी हो गए हैं। रिश्तों के बीच केवल स्वार्थ और लालच मौजूद है।

2. राजनीतिक सरोकार

ममता कालिया की कहानियाँ जीवन के विविध पक्षों को सजीवता से चित्रित करती हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक विसंगतियों और सांस्कृतिक ह्रास का अद्वितीय चित्रण मिलता है। ममता कालिया की कहानियाँ केवल घरेलू संसार तक सीमित नहीं हैं, वे राजनीति और सत्ता की चालों को भी उजागर करती हैं।

भ्रष्टाचार और शोषण - उनकी कई कहानियों में आम आदमी राजनीति की ठगी और छल से पीड़ित है। ममता कालिया ने समाज की भ्रष्ट व्यवस्था और मूल्यहीनता को अपनी कहानियों में अत्यंत सजीवता से दर्शाया है। इस संदर्भ में उनकी कहानी 'सुलेमान' (1989) उल्लेखनीय है, जिसमें एक युवक भ्रष्ट समाज का लाभ उठाकर उच्च पद पर पहुंच जाता है।

सत्ता से दूरी - राजनीति में जनता की आकांक्षाएँ अक्सर अनसुनी रह जाती हैं, इस यथार्थ को उन्होंने शब्द दिए हैं। कहानी 'सफर में' उन्होंने एक साथ कई मुद्दों को उठाया है। कहानी की शुरुआत में ही रेलवे सिस्टम की पोल खुल जाती है। साथ ही साथ बिहार जाने वाली रेलगाड़ी की स्थिति कैसी होती है, इसको लेखिका ने बहुत ही यथार्थ रूप में वर्णित किया है। जैसे-- "बिहार जाने वाली गाड़ी अन्य गाड़ियों से अलग होती है। उसमें सीट के आरक्षण का कोई अर्थ नहीं। डेली पैसेन्जर, जिनके बारे में श्रीलाल शुक्ल लिख चुके हैं, कोच में ठसाठस भरे हैं। वे बक्सर से चढ़ते हैं 'बस आरा तक जाना है न' कहकर सीटों पर इंच-इंच कब्जा कर लेते हैं।"[5] ममता कालिया की 'सपनों की होम डिलीवरी' एक सूक्ष्म और संवेदनशील दृष्टिकोण से जीवन के उन छोटे-छोटे सपनों की कहानी है जिनकी प्राप्ति के लिए इन्सान प्रयत्नशील रहता है। यह कहानी आधुनिक शहरी जीवन की सच्चाइयों और आर्थिक संघर्षों को गहराई से उकेरती है।

स्त्रियाँ और राजनीति - राजनीति में महिलाओं की भूमिका, उनकी उपेक्षा और संघर्ष को भी उन्होंने उकेरा है। ममता कालिया ने 'नई सड़क का आखिरी मकान' कहानी में दिल्ली के एक मध्यमवर्गीय परिवार के जीवन को दर्शाया है। यह कहानी दिल्ली में एक पुराने मकान के आस-पास बसे लोगों की जिंदगी, उनकी परेशानियाँ और सपनों को उजागर करती है।

'नई सड़क का आखिरी मकान' ममता कालिया की कहानियों में से एक है, जो महिलाओं के जीवन और समाज में उनकी स्थिति पर आधारित है। कहानी में एक महिला है, जो एक ऐसे घर में रहती है जो एक नई सड़क के अंत में स्थित है। यह घर एक ऐसे परिवार का प्रतीक है जो समाज से अलग रहता है।

समकालीन राजनीतिक माहौल - बदलते समय के साथ नेताओं की भाषा, चाल-ढाल और नीतियाँ कैसे समाज को प्रभावित करती हैं, यह उनकी कहानियों में झलकता है। ममता कालिया की कहानियाँ जीवन के विविध पक्षों को सजीवता से चित्रित करती हैं। इनकी कहानियाँ मुख्यतः सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर केंद्रित होती हैं, लेकिन उनमें राजनीतिक आयाम भी स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। उनके लेखन में राजनीतिक संदर्भ और सामाजिक न्याय के मुद्दों को गहराई से उकेरा गया है। उनकी कहानियों में राजनीतिक आयाम हमारे सामने इस प्रकार से परिलक्षित होते हैं --

- सामाजिक न्याय और असमानता-- ममता कालिया की कहानियाँ अक्सर समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय को उजागर करती हैं। यह असमानता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि राजनीतिक भी होती है, जहाँ सत्ता और अधिकारों का दुरुपयोग होता है।

- महिला सशक्तीकरण-- उनकी कहानियों में महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकारों की बात की जाती है। यह एक राजनीतिक मुद्दा है, क्योंकि यह समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने और उन्हें समान अधिकार दिलाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

- शहरीकरण और विस्थापन-- ममता कालिया की कहानियों में शहरीकरण और इसके कारण होने वाले विस्थापन का भी जिक्र होता है। यह एक राजनीतिक मुद्दा है, क्योंकि यह सरकार की नीतियों और योजनाओं से जुड़ा हुआ है।

- सत्ता और भ्रष्टाचार-- उनकी कहानियों में सत्ता और भ्रष्टाचार के मुद्दों को भी उठाया गया है। यह दिखाता है कि कैसे सत्ता का दुरुपयोग समाज में असमानता और अन्याय को बढ़ावा देता है।

- सामाजिक परिवर्तन-- ममता कालिया की कहानियाँ सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को भी रेखांकित करती हैं। यह परिवर्तन केवल सामाजिक नहीं, बल्कि राजनीतिक भी होता है, जहाँ समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार और अवसर मिलते हैं।

ममता कालिया की कहानियाँ हमें यह समझने का मौका देती हैं कि कैसे राजनीतिक मुद्दे हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं और हमें सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी लेखनी में राजनीतिक आयाम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो पाठकों को समाज की वास्तविकताओं से रूबरू कराते हैं। ममता कालिया ने समाज की भ्रष्ट व्यवस्था और मूल्यहीनता को अपनी कहानियों में अत्यंत सजीवता से दर्शाया है। इसी प्रकार, उनकी कहानी **'इक्कीसवीं सदी'** **(1987)** में उन्होंने इक्कीसवीं सदी के खोखलेपन को बखूबी चित्रित किया है।

ममता जी की दृष्टि में विश्वविद्यालयों की अनियमितताएं और बड़े घर की बहू-बेटियों के होटल के बाथरूम से गायब होने की घटनाएं इस स्वप्न को साकार नहीं होने देंगी। ममता जी ने नारी जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने में विशेष रुचि ली है। उन्होंने **'मनहूसाबी'** (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 1 नवम्बर 1983) कहानी में कामकाजी नारियों की मानसिक पीड़ा और विवशता का मार्मिक चित्रण किया है। मनहूसाबी ('ऊषा') को घर में पति से तवज्जोह नहीं मिलती, केवल टोक, शायद इसलिए भी उसे ज़ोर से बोलने की आदत पड़ गई, जिसके लिए फिर टोक। वह अपने को रसोई के उन कॉक्रोचों जैसा पाती है, जिनकी जिजीविषा में 'दबाने, डराने

और भगाने' से भी अन्तर नहीं पड़ता। बहन आशा के बाद फिर बच्ची होने के डर से उसकी माँ गर्भपात कराना चाहती थी, पर वह पैदा हो गई; बाद में भाइयों ने उसका नाम मनहूसाबी रख डाला। दफ्तर के काम से बेदाग कपड़ों और चरित्र वाले, आर्यसमाजी सोच के प्राध्यापक पति ने किसी एक लड़की के उत्थान के लिए उससे शादी की थी, अब तीन शरारती बच्चे सँभालती, स्कूल में न्यूनतम पैसे पाकर भी पढ़ाती, सबकी पसंद याद कर खाना पकाती, जूठा उठाती पत्नी के घुटनों के दर्द पर कहते हैं, "अब तुम गई काम से, यह बुढ़ापे की शुरुआत है।"[6] कहानी **'सफर में'** उन्होंने एक साथ कई मुद्दों को उठाया है। इनकी एक अन्य प्रसिद्ध कहानी है **'जांच अभी जारी है'**। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने संस्थानों, कॉलेजों और बैंकों के अधिकारियों के द्वारा स्त्रियों पर हो रहे शोषण और अत्याचारों का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। कहानी 'जांच अभी जारी है' में लेखिका यह बताना चाहती है कि आधुनिक युग में भी स्त्रियाँ व्यवस्थाओं के जाल में जकड़ी हुई हैं। बड़े-बड़े संस्थानों, कॉलेजों और बैंकों के अधिकारियों की कुत्सित नीयत के कारण स्त्रियों का जीवन टूटकर बिखर जाता है। उनकी सारी योग्यता और ईमानदारी बेमानी प्रतीत होती है। अधिकारियों द्वारा स्त्रियों की विवशता को अपने मनोरंजन का साधन बनाने की प्रवृत्ति, उनकी असफलता को स्त्रियों के लिए कलंक बना देती है।

निष्कर्ष - ममता कालिया की कहानियाँ सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों के जीवंत दस्तावेज़ हैं। वे स्त्री के संघर्ष, मध्यमवर्ग की पीड़ा, समाज की असमानता और राजनीति के छलप्रपंच को उजागर करती हैं। उनकी कहानियों से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि सामाजिक-राजनीतिक चेतना का माध्यम भी है। आज के समय में भी उनकी कहानियाँ उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी लिखे जाने के समय थीं।

संदर्भ

1. साहित्य के सरोकार और दलित साहित्य : जयप्रकाश कर्दम, हिन्दी साहित्य के बदलते सरोकार एवं मूल्य, पृष्ठ संख्या-20। **2.** कालिया ममता, मेरी चर्चित कहानियाँ, पृष्ठ संख्या-55। **3.** मकालिया ममता, कहानी संग्रह "मुखौटा" कहानी 'चिरकुमारी' पृ.सं. 8। **4.** कहानी 'बीमार' पृ. 32। **5.** ममता कालिया की कहानी 'सफर' में पृ. 37। **6.** ममता कालिया की कहानी 'मनहूसाबी' पृ. 56-65।

शोधार्थी-हिन्दी विभाग
श्रीगुरु रामराय विश्वविद्यालय, देहरादून
(उत्तराखण्ड)
मो. 8171815646
निदेशक-डॉ. गरिमा डिमरी, सहायक आचार्य, गढ़वाली भाषा एवं संस्कृति विभाग
हिन्दी विभाग, श्रीगुरु रामराय वि.वि., देहरादून

प्रकृति जीवन का स्रोत और उसका आधार है, प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा मानव जीवन की अनिवार्यता है।

दूसरों की मदद करते हुए यदि दिल में खुशी हो, तो वही सेवा है बाकी सब दिखावा है।

माखनलाल चतुर्वेदी की काव्य साधना

राजेन्द्र परदेसी

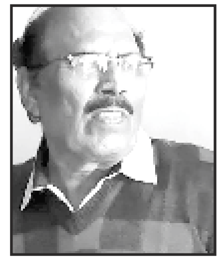

जब भारत देश के पाँवों में दासता की बेड़ियाँ जकड़ी हुई थी और देशभक्त इन बेड़ियों को काटने के लिए प्राणपण से कटिबद्ध थे। राष्ट्रचेता 'भारतीय आत्मा' पं. माखनलाल चतुर्वेदी अपनी कविताओं से उनमें ऊर्जा और ऊष्मा का संचार करने में सतत साधनारत रहे। इसी कारण कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीय भावना एवं स्वतंत्रता आन्दोलन को ऊर्जा प्रदान करने वाले कवि के रूप में ही अधिक ख्याति प्राप्त की। जबकि उनकी कविताओं में प्रकृति-चित्रण भी अत्यंत उल्लेखनीय है और शिल्प का भी एक अलग रूप है। विशेषकर प्रतीक और बिम्ब योजना में यह स्पष्ट द्रष्टव्य है। स्वतंत्रता की देवी की अराधना के लिए उन्होंने बलिदान के लिए तत्पर वीरों को सम्बोधित करते हुए कहा है - चलो पंथी चलो, बलि के द्वार खोलो/प्रलय वीणा पर, हृदय की अंगुलियों से/खुल सके तो वह अगर झंकार खोलो।

माखनलाल चतुर्वेदी को अपने देश के साथ-साथ इसकी प्राकृतिक विशेषताओं से भी आन्तरिक लगाव था। उनके कोमल हृदय को प्रकृति ने अपनी माधुरी सुषमा, छवि और हलचल, परिवेश ने भी लुभाया था। उनके भाव जगत में प्रकृति नटी के अनेक मनोमुग्धकारी सजीव चित्र उतरते, सजते, संवरते और शब्द रूपों की लालसा से मचलते रहते थे। द्रष्टव्य है एक प्रकृति बिम्ब -

फुदक-फुदक लहरें, सागर की छोरियाँ/ पानी की वस्त्रहीन, पागल मुंहजोरियाँ/ इनका दिलदार चाँद जिस दिन आयेगा/ ऊँची उठी किरणों से गले जग जायेगा। इसी तरह प्रातःकाल के सूरज का एक काव्यबिम्ब अवलोकनीय है -

रवि की प्रजनन कसमसा उठी ऊषा के घर
पंखिनियों ने गाये स्वागत के गीत अमर

x x x x

सूरज की किरणें, हिमनभ पर
उतर-उतर चलती है जाड़ा
इन सोने की गायों को
कैसे भाया चांदी का बाड़ा।

x x x x

फूलों से देखो कीचड़ का यह नाता,
किस ढब गढ़ता है स्वाद-सुगन्ध, विधाता।

डॉ शम्भुनाथ चतुर्वेदी ने इनके बारे में कहा है कि एक भारतीय आत्मा ने प्रकृति के विविधवर्णी दृश्य अंकित किये हैं। प्रकृति चित्रांकन में उनकी शब्द तूलिका ने मनमोहक दृश्य बिम्बों (चोक्षुषबिम्बों) की सृष्टि की है। प्रकाश और अन्धकार के द्वन्द्व तथा अन्ततः ज्योत्सना के चतुर्दिक प्रसार और विस्तार के साथ ही साथ तमस लघु आकार का होता जाता है। चतुर्वेदी जी ने निशा को एक माता तथा तम को एक शिशु के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार के चित्रांकन में रंग योजना के साथ एक भारतीय मां का वात्सल्य भाव स्वतः जुड़ जाता है। यह स्वाभाविक सम्बद्धता की प्रकृति जन्य प्रवृत्ति उन्हें पाश्चात्य विम्बवादियों एमिली, डिकिसन एच.डी., एमी लॉदेल और एजरा पाउण्ड से अलग कर देती है। पाश्चात्य बिम्बवादी सृजन द्वारा अपनी काव्य प्रतिभा का केतु फहराना चाहते हैं। जबकि माखनलाल चतुर्वेदी दृश्य सौन्दर्य से अभिभूत होकर कुछ पंक्तियाँ अनायास ही काव्य सृजन की आत्म विस्मृति की स्थिति में लिख देते हैं और एक मनमोहक बिम्ब की सृष्टि स्वतः ही हो जाती है, देखें -

तम शिशु गोदी से निशि की रानी
तारों का डर दिखलाकर उसे सुलाती है।
मेघों की जब-जब बोल उठी सांसें
बिजली-सी तब मैं तड़प-तड़प रह जाती हूँ।
जब झरने की लोरियाँ सुनाई पड़ती हैं
रवि की प्रजनन कसमसा उठी उषा के घर
पंखिनियों ने गाए स्वागत के गीत अमर।

नवयुग का जागरण भी उनका एक प्रमुख काव्योद्देश्य था। इसके लिए वे नया से नया भावनाकुल बिम्बानुसंधान कर लिया करते थे। उन्होंने नये युग की जागृति के साथ प्रेषण संदेश बिम्ब का अटूट सम्बन्ध संस्थापित किया है जो अद्वितीय है-

भैरवी का समय है यह
गीत पंछी गा रहे हैं
भानु का आना सितारे
डूबकर समझा रहे हैं।

कवि चतुर्वेदी जी की भाषा भी गंगा-यमुना-नर्मदा की तरह प्रवाहमयी थी। वह चित्रमयी, संगीतमयी, मानमयी है, समालोचकों को सोचना पड़ता है कि उनकी वर्णों की यह टकसाल कितनी खरी है, कितनी भरी-पूरी है, अनोखी तो है ही। उनके प्रतीकों, काव्यबिम्बों, उपमाओं, शब्द विन्यास ने उनकी कमनीय कल्पना और उनकी अभिव्यंजना के बांकपन ने पाठकों पर जादू-सा किया था जो अभी भी पढ़ते समय सहज ही समझा जा सकता है। वर्षा की एक छटा में उनके काव्य बिम्बों की इन्द्र धनुषी छटा द्रष्टव्य है -

बदरिया डर-डर कर झररी
सागर पर मत झरे अभागिन
गागर को भर री।
एक-एक दो-दो बुदों में
बंधा सिन्धु का मेला
सहस-सहस वन विहँस उठा है
यह बूंदों का रेला
तू खोने से नहीं बादरी
पाने से डर री।
बदरिया डर कर झररी।

पावस की बदरिया का कितना जीवन्त अंकन किया है चतुर्वेदी जी ने। इसी सन्दर्भ में और भी द्रष्टव्य है -

मैं अपने से डरती हूँ सखि
पल पर पल चढ़ते जाते हैं।
पद आहट बिनरी चुपचाप
बिना बुलाये आते हैं दिन
मास बरस में अपने आप
लोग कहें चढ़ चली उमर में
पर मैं नित्य उतरती हूँ सखि
मैं अपने से डरती हूँ सखि।

विष्णु प्रभाकर जी ने 4 अप्रैल 1989 को कानपुर

में पं. माखनलाल चतुर्वेदी जन्मशती समारोह के अपने उद्‌बोधन में उन्हें 'असाधारण काव्य पुरुष' सम्बोधित करते हुए उनके व्यक्तित्व-कृतित्व का यह मूल्यांकन किया था- माखनलाल स्वतंत्रता संग्राम के महान युग के भोक्ता और स्रष्टा दोनों थे। उनके साहित्य में उनके ये दोनों रूप मुखर हुए हैं। वहाँ क्रान्ति का शंखनाद भी है और सौन्दर्य की अनुभूति भी। उन्होंने अपने लोकप्रिय प्रेम को उसी तरह राष्ट्रप्रेम में रूपान्तरित कर दिया जैसे महादेवी वर्मा ने अध्यात्मिकता में। इसीलिए उनका मुखर स्वर क्रान्ति और विद्रोह का ही बन पड़ा है। वे बांसुरी के स्थान पर पांचजन्य उठाते हैं, और पिस्तौल रखकर गांधी की गोपियों में शामिल हो जाते हैं। तभी तो उनका पांचजन्य अहिंसक युद्ध का उद्‌घोष करने लगता है। वे देशभक्ति, उत्साह और ओज के अद्‌भुत कवि हैं। उनकी भाषा बड़ी जीवन्त है। उसमें अनगढ़ता है फिर भी पाठकों तक उनके भाव सम्प्रेषण ने कहीं कोई परेशानी नहीं पेश आती। वाणी में उन जैसी आत्मीयता और निर्भीकता अब विरल होती जा रही है। वास्तव में वे निरन्तर चलते रहने में विश्वास करने वाले असाधारण यात्रा-पुरुष थे।

उन धधकते दिनों में नवीनजी और दिनकरजी का स्वर आक्रामक था। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य धर्मयुद्ध की भावना से अनुप्राणित है। इसी तरह सियारामशरण गुप्त की कविता में अहिंसा की करुणा का प्रधान्य है। किन्तु 'भारतीय आत्मा' की कविता में ओज और करुणा अविभक्त रूप से अनुस्यूत है। जेल में रची गई 'कैदी और कोकिला' इसका उत्कृष्टतम उदाहरण है -

काली तू रजनी भी काली /शासन की करनी भी काली/काली लहर कल्पना काली /मेरी काल कोठरी काली/ टोपी काली कमला काली /मेरी लौह श्रृंखला काली /पहरे की हुंकृति की व्याली/ तिस पर है गाली ए आली/ इस काले संकट सागर पर/ करने को मदमाती/ कोकिल बोलो तो/ गाकर है तैराती/ कोकिल बोलो तो।

अपने जीवन दर्शन के अनुरूप ही वे मातृभूमि की पूजा का दोना बलिदान के प्रेरणा दा रक्त से भरा हुआ देखने को उत्सुक रहा करते थे। इसीलिये जवानी के जोश को जगाते हुए वे उससे अपनी नसों में बहने वाले रक्त का प्रमाण मांगते थे। उनकी ये कालजयी पंक्तियाँ युगों तक लैम्पपोस्ट की तरह पथ दर्शाती रहेंगी-

द्वार बलि का खोल, चल भूडोल कर दे, /एक हिमगिरि, एक सिर का मोल कर दे /मसल कर अपने इरादों सी उठाकर/ दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दे/रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी ?/जाँच कर तू सीस दे देकर जवानी।

स्वदेश की शस्य श्यामला, सुखदा-वरदा धरती के प्राकृतिक दृश्यों का मानवीकरण करते हुए उन्होंने कई उपमान भी प्रदान किये। द्रष्टव्य हैं कुछ उदाहरण- *तम शिशु गोद में ले निशि की रानी /तारों का डर दिखलाकर उसे सुलाती है।* वे आत्मा की अमरता पुर्नजन्म आदि को भी नये-नये उपमान प्रदत्त कर अपनी हूक का बयान कुछ इस तरह करते हैं - *जिस दिन तुमको कलियों से /आन्तरिक प्यार आता है/ उस दिन उसके सिर मां के /चरणों में उतार आता है।* प्रकृति वधू का उत्कृष्टतम संश्लिष्ट रूप चित्रण करते समय भी वे सुकुमार प्रेम भावनाओं में ही रमण करते हैं - *गेहुओं के गर्व पर/ सरसों उठी है झूम/ प्रकृति को सुकोमल/ रवि किरणें रही हैं चूम।* प्रकृति दर्शन को उनके नैनों को उन्होंने संत कबीर की तरह 'काजल की कोठरी' न कहकर आधुनिकता के बोध से सजा हुआ बंगला कहा। यह उनके मौलिकता सने निश्छल प्रेम और नूतन भावबोध का अनुपम उदाहरण है - *आज नयन के बंगले में/ संकेत पाहुने आये री सखि।* उन्होंने सन्दर्भ रहित प्रेम काव्य भी पर्याप्त संजीदगी के साथ लिखा - *जिस दिवस प्राण में नेह वंशी बजी,/ बालपन की खानी नई हो उठी,/ कि रसहीन सारे बरस रस भरे/ हो गये, जब तुम्हारी छटा छा गई।*

चतुर्वेदी जी सामाजिक जीवन में पूंजीवादियों की अथाह समृद्धि और सर्वहारा वर्ग की दयनीय दशा के सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न दर्शक मात्र न रहकर स्थिति का चित्रण कर समाज को सही सन्दर्भों में जूझने के लिए भी प्रेरित करते रहते थे। उन्होंने लिखा है कि - *महल उड़ रहे, झोपड़ी खो गई है/ कि ईमान ईमान को ठग रहा है।*

हरित क्रान्ति के नारे लगाते-लगाते भी हमारी कृषि जन्य अर्थ व्यवस्था इतनी अव्यवस्थित हो चली कि आज अन्नदाता की सतानें अन्न के मुट्ठी भर दानों तक को, सब्जीदाल तक को तरस रही है। दूसरी ओर विश्व में वैश्वीकरण का खयाली पुलाव पकाकर बाजार वहां के धन्नासेठों को सौंपा जा रहा है। हमारी स्वाधीनता, आत्मनिर्भरता, स्वदेशी भावना, उत्पादकता, स्वावलम्बन सबको लात मारने पर बैठे हैं। इस स्थिति का एक कटु सत्य इस काव्यांश में उभर उठा है। *हरियाली के ब्रहत्त पर/ कितनी गाली बरसेंगी?/ छोटी-छोटी सन्तानें, रट/ अन्न-अन्न तरसेंगी।/ होंगे पकवान किसी के/ उसकी इस रखवाली में/ उसका यह रक्त सजेगा/ कुछ धनिकों की थाली में।* निष्कर्षतः पं माखनलाल चतुर्वेदी की साहित्यिक तपश्चर्या से देश और साहित्य दोनों के संवर्द्धन का पथ प्रशस्त हो सकता है। उनकी सुपावन स्मृति को शत्-शत् नमन।

44, शिव विहार, फरीदीनगर
लखनऊ-226015
मो. 09415045584

●

खुश रहने के सूत्र

खुश रहना मिजाज पर है। थोड़े से लोग ऐसे होते हैं, जो हर हालत में 'खुश मिजाज' बने रहते हैं। वैसे प्रसन्न रहने के सूत्र या गुर हैं - जरा इनको हम अपनाकर देखें।

महान जर्मन कवि और दार्शनिक गेटे ने खुश रहने, सदा मुस्कान बनाए रखने और संतोष की चमक बनाए रखने के लिए नौ बातें बताई हैं --

(1) इतना स्वास्थ्य हो कि श्रम करने में आनन्द आए।

(2) इतना धन हो कि अपनी जरूरतें पूरी कर सको।

(3) इतनी ताकत हो कि मुसीबतों से मोर्चा लेकर उन्हें जीत सको।

(4) इतनी शालीनता हो कि अपनी गलती स्वीकार कर सको और उसे छोड़ सको।

(5) इतना धीरज हो कि जब तक कुछ अच्छी चीज न निकले, तब तक सतत मेहनत करते रहो।

(6) इतनी उदारता हो कि अपने पड़ोसी में कुछ अच्छाई देख सको।

(7) इतना प्यार हो कि उसकी बदौलत दूसरों के लिए मददगार बन सको।

(8) इतनी श्रद्धा हो कि ईश्वर की वस्तुओं को यथार्थ रूप दे सको।

(9) इतनी आशा हो कि भविष्य से संबंधित चिंतापूर्ण डरों को दूर भगा सको।

समकालीन मलयाली सिनेमा के सामजिक आयाम

प्रो. मधु वासुदेवन

मलयाली सिनेमा का व्यवस्थित इतिहास 1928 से आरंभ होता है। जे. सी. डानियल द्वारा निर्देशित 'विगत कुमारन' केरल की प्रथम फीचर फिल्म मानी जाती है जो एक मूक सिनेमा था। इस सिलसिले का दूसरा सिनेमा है 'मार्तण्डवर्मा'। उसके बाद 1938 में एस. नोटानी के निर्देशन में निर्मित 'बालन' की प्रदर्द्धिनी के साथ मलयाली सिनेमा की वास्तविक विकास यात्रा शुरू होती है। स्पष्ट तौर पर देखते हैं कि 'बालन' के माध्यम से मलयाली सिनेमा का मौलिक स्वरूप बुना गया है। फिल्मी आलोचक 'बालन' को केरल का पहला लक्षणयुक्त सिनेमा मानते हैं जिसके बल पर परवर्ती सिनेमा का रंग महल खड़ा कर दिया है।[1] इतने सारे दशकों के गुजरने के बावजूद समकालीन मलयाली फिल्म उस युग से संपर्क बनाये रखती है, क्योंकि मलयाली सिनेमा का अतीत जिस मूल्य को लेकर गठित हुआ है वह 'न्यू जनरेशन' के दौर में भी काफी प्रासंगिक है।

अनेक चरणों से विकसित मलयाली सिनेमा की वस्तुगत उन्नति स्वतंत्रता के तदुपरांत दिखाई देती है। कुंजाक्को, पी. भास्करन, रामु कर्याट, विन्सेंट, पी. एन. मेनन, रामदास आदि उस कालखंड के मेधावी निर्देशक हैं। इन निर्देशकों का मलयाली फिल्मी दुनिया में बड़ा योगदान रहा है। केरलीय संस्कृति एवं रीति रिवाज़ के प्रति उनकी फिल्मों में गहरी आत्मीयता दिखती है। 'नील कुइल, न्यूज़पेपर बॉय, 'स्नेह सीमा जीवित नौका' आदि ऐसी बहुचर्चित फिल्में हैं जिनके ज़रिए क्लासिकी सिनेमा की सामान्य प्रवृत्तियां केरल में प्रतिष्ठित हुई। 'मुरप्पेण्णु, ओलवुम तीरवुम, नगरमे नन्दी' जैसी फिल्मों में उनका सहज विस्तार देखने को मिलता है। वह ब्लैक एंड व्हाइट फिल्मों का माहौल था। उस समय की अनेक फिल्में राष्ट्रीय स्तर पर भी पुरस्कृत हुईं। उसका उत्तम नमूना है, 'चेम्मीन'। वह ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता तकषी शिव शंकर पिल्लै के विश्रुत उपन्यास का फिल्मी रूपांतरण है। समाज में इस रंगीन फीचर फिल्म की व्यापक स्वीकृति हुई। नदी, कुट्टियेडत्ती, कंडम बच्च कोट्ट, भार्गवी निलयम, अच्चनुम बाप्पयुम, कडलप्पालाम आदि इस दशक की कुछ बहुचर्चित फिल्में हैं। इनके प्रकाशन के साथ मलयाली सिनेमा का व्यावसायिक पक्ष प्रचंड हो गया।

कुन्जाक्को की 'उदया' और पी. सुब्रह्मण्यम की 'नीला' के प्रभाव में अनेक लोकप्रिय फिल्मों का निर्माण लगातार होता रहा। प्रवृत्तिगत दृष्टि से देखें तो सन पचास के सिनेमा का

क्रमिक विकास सन साठ की मलयाली फिल्मों में देख सकते हैं। साठ के महान निर्देशक हैं सेतु माधवन जिनकी अधिकांश फिल्मों का निर्माण 'मंजिलास' बैनर की तरफ से हुआ। 'करकानाक्कटल, अरनाषिका नेरम, कडलप्पालाम' आदि उनकी मशहूर फिल्में हैं। नाटककार तोप्पिल भासी की समाजोन्मुखी फिल्मों ने संवेदना को नई दिशा प्रदान की। 'मूलधनम, निंगल एनने, कम्यूनिसटाक्की' आदि उनके ख्याति प्राप्त नाटकों के फिल्मी रूपांतरण हैं। के. टी. मोहम्मद भासी की परंपरा में आनेवाले समर्थ नाटककार हैं जिन्होंने तीस से अधिक फिल्मों के लिए पटकथा तैयार की जिनमें प्रमुख है 'सृष्टि'।

सन पचास और साठ की मलयाली फिल्मों की कुछ खास विशेषताएं सामने आती हैं। उस समय की अधिकांश फिल्मों की निर्मिति तत्कालीन प्रमुख साहित्यिक रचनाओं के आधार पर हुई है।[2] उपन्यास से लेकर कविता (चंगंपुषा का रमणन) तक बाजारू सिनेमा के लिए प्रेरणा रही। उनमें पारिवारिक जीवन को सर्वाधिक प्रमुखता दी थी। यथार्थवादी शैली में चित्रित इन फिल्मों का आस्वादन अपेक्षाकृत भावुक स्तर पर होता था। अर्थात पचास-साठ की फिल्में मूलतः वास्तुवादी एवं भावुकतावादी मानी जाती हैं। नाटकीयता, मनोरंजन, समाजोन्मुखी यथार्थवाद, संगीतात्मकता, कथा का शुभांत आदि इन दशकों की फिल्मों की सामान्य पहचान है। सत्यन, प्रेम नसीर, तिक्कुरिशी, मधु, उम्मर, कोट्टारक्करा, अडूर भासी, बहदुर, पी.जे. आंटणी, राघवन, विन्सेंट, सुधीर, अम्बिका, रागिणी, पिद्मनी, मिस कुमारी, विजय निर्मला, शारदा, षीला, के. आर. विजया आदि इन फिल्मों के प्रमुख अभिनेता हैं। इस काल में वैक्कम मुहम्मद बशीर, उरूब, शिवशंकर पिल्लै, एम. टी. वासुदेवन नायर, परप्पुरम, ललितांबिका अंतर्जनम, के. सुरेंद्रन सरीखे अनेक गंभीर साहित्यकारों की लोकप्रिय रचनाओं का फिल्मी रूपांतरण हुआ था। इनमें ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता एम.टी वासुदेवन नायर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे अद्‌भुत एवं अतुल प्रतिभा के धनी रचनाकार एवं फिल्मकार हैं जिनसे मलयाली साहित्य और सिनेमा का स्वातंत्र्योत्तर इतिहास सर्वदा आभारी है।[3] सर्वोपरि एम टी अपने आप में एक समर्थ फिल्मकार भी हैं। 'निर्माल्यम' उनकी चरम सृष्टि है जिसके लिए उन्हें राष्ट्रपति का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। एम.टी. की उत्तुंग उपस्थिति मलयाली सिनेमा की सृजनात्मकता को सदा ऊर्जा प्रदान करती है।

सन साठ की फिल्मों की कुछ अतिरिक्त विशेषताएं हैं। उस जमाने में फिल्म स्टूडियो की पारंपरिक सीमा को लांघकर मलयाली सिनेमा का फिल्मांकन धीरे-धीरे भाग बाहर आने लगा। नतीजतन पहली बार जैविक प्रकृति को सिनेमा में उचित स्थान दिया गया। प्रकृति को केंद्र बनाकर अनेक फिल्में निर्देशित हुई। नदी, समुन्दर, झील जैसे प्राकृतिक परिवेश के प्रभावात्मक व्यवहार से मलयाली सिनेमा की सौंदर्य चेतना प्रखर हो गई। यथाक्रम 'नदी, चेम्मीन और मंजु' इसके उदाहरण हैं। साथ ही गरीबी, संयुक्त परिवार का संघर्ष, बेरोजगारी, भूख, सामाजिक भ्रष्टाचार, शोषण सामंती सभ्यता, शहरीय संस्कृति, निम्न मध्यवर्गीय जीवन की जटिलता, नारी की पतित स्थिति, नैतिकता, हिंदू मुस्लिम एकता, इतिहास एवं मिथकों का पुनर्सृजन आदि चर्चित काल की फिल्मों की विविध प्रवृत्तियां मानी जा सकती हैं। इस समय के अधिकांश फिल्मकार मार्क्सवादी थे। फलस्वरूप उनकी फिल्मों में मार्क्सवादी चिंतन का सहज संयोग दिखाई देता है। पचास-साठ की फिल्मों में प्रतिपादित यथार्थवादी परिपाटी की मूल प्रेरणा वामपंथी विचारधारा रही। उसी तरह आधुनिकता की प्रतिष्ठित प्रवृत्तियों का प्रथम परिचय सत्तर के मलयाली सिनेमा में प्रदर्शित होता है। विश्वव्यापी आधुनिकतावादी सौन्दर्यमूलक चिंतन का प्रभाव सत्तर की मलयाली फिल्मों की

सामान्य विशेषता थी। बौद्धिकता एवं कलात्मकता का सम्मिश्रण इस समय के सिनेमा को अलग व्यक्तित्व प्रदान करता है।

पुणे फिल्म संस्थान का वैचारिक प्रभाव अन्य भारतीय भाषायी फिल्मों की तरह मलयाली सिनेमा पर भी गहराई से पड़ा है। सिनेमा का मस्तिष्क की कला के रूप में परिवर्तन होने लगा और बौद्धिकतावादी दृष्टिकोण से सिनेमा को निर्मित एवं निरूपित करने की प्रवृत्ति तीव्रता लेने लगी।[4] यथार्थ के स्थान पर अतियथार्थ की प्रतिष्ठा हुई। सिनेमा अनेक दार्शनिक सिद्धांतों तथा बहुआयामी विचार तत्वों से प्रभावित हुआ। भावात्मकता विचारात्मकता में परिवर्तित हुई। वह वाणिज्यिक सिनेमा से पूरी तरह अलग हो गया। आम तौर पर सिनेमा का राजनीतिक पक्ष दृढ हुआ। अपनी वैश्विक, कलात्मक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि की वजह से तत्कालीन सिनेमा का स्वरूप एकरेखीय हो गया। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत स्वीकृति हासिल करने में सत्तर के निर्देशक सफल हुए, फिर भी उस जमाने के निर्देशकों की कलात्मक दृष्टि एवं संवेदनात्मक अनुभूतियों का वास्तविक विकास अस्सी में ही हुआ। इसी दौर में एक नई फिल्मी संस्कृति के रूप में समानांतर सिनेमा या नवसिनेमा का पदार्पण हुआ। अडूर गोपालाकृष्णन, जी. अरविंदन, जॉन अब्रहाम, पी. ए. बक्कर, रवींद्रन, के. पी. कुमारन, टी. वी. चंद्रन, के. आर. मोहनन, पवित्रन, शाजी एन. करुण, एम.पी. सुकुमारन, पद्मकुमार, राजीवनाथ, स्याम प्रसाद, के. टी. कुंजु मोहम्मद आदि समानांतर सिनेमा के प्रमुख कार्यकर्ता थे। उनके माध्यम से नयी आस्वादन प्रक्रिया निर्मित हुई, जिसमें विद्रोहात्मक परिवर्तन लाये गए। नतीजतन सिनेमा अधिकाधिक व्यष्टिपरक हो गया और व्यक्ति के माध्यम से ही समाज को देखने-परखने की पद्धति व्यापक हो गयी। जड़ता, संत्रास, यौन कुंठा, अकेलेपन, आशाहीनता, भविष्य के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण आदि सिनेमा की सामान्य प्रवृत्ति मान ली गई। उपर्युक्त परंम्परा को बनाये रखनेवाले समकालीन निर्देशक हैं प्रियनंदन, एम. जी. शशि, सनलकुमार शशिधरन, मुरली नायर, डॉ. बिजु, संतोष-सतीश बाबुसेनन, डोन पालत्र, शिनोस-सजास रहमान, मणिलाल, तारा रामानुजन, के.पी. श्रीकृष्णन, कृष्णेंदु कलेश आदि।

सत्तर के मलयाली सिनेमा ने फिल्मी अनुभव को पूरी तरह परिमार्जित किया जिसके कारण आस्वादन की परंपरावादी प्रवृत्ति खंडित हुई। इसका अर्थ यह नहीं कि समानांतर सिनेमा ने तत्कालीन मलयाली सिनेमा का नेतृत्व हासिल कर लिया। वास्तव में समानांतर सिनेमा मलयाली सिनेमा की एक प्रमुख प्रवृत्ति मात्र ही रही। उस समय सिनेमा ऐसे भी निर्मित होते थे जिनमें भावुकता एवं रूमानी मानसिकता को प्रधानता दी जाती थी। जाहिर है, इन फिल्मों में सिनेमा के बाजारू पक्ष की उपेक्षा हुई। इस प्रकार सत्तर की फिल्मी संस्कृति से गुजरते समय हमको अनुभव होता है कि अस्सी-नब्बे का सिनेमा उसका सहज विस्तार है। सुकुमारन, सोमन, भारत गोपी, नेटुमुटि वेणु, प्रताप पोत्तन, वेणु नागवल्ली, तिलकन, बालन के. नायर, सरीना वहाब, शोभा, जलजा, शान्ति कृष्णा, विजय मेनन, श्रीनाथ जैसे प्रतिभावान अभिनेताओं की उपस्थिति इस काल विशेष के सिनेमा को नई चेतना प्रदान करती है। के.जी. जॉर्ज, ऐ.वी. शशि, भरतन, पद्मराजन, लेनिन राजेंद्रन, मोहन, बालु महेंद्रा आदि इस दौर के प्रमुख फिल्मकार हैं जिन्होंने यथार्थवाद की शक्ति एवं सौंदर्य का सदुपयोग करते हुए नयी फिल्मी संस्कृति का सूत्रपात किया। 'पेरुवषि अम्बलम, तकरा, इणा, चिल्लु, उत्कटल, ओलंगल, पालंगल, चामरम, निद्रा, रतिनिर्वेदम, पार्वती, विडपरयुम मुंपे, शालिनी एनटे कूटुकारी' अदि इस जमाने की कुछ कालजयी फिल्मी रचनाएं हैं जिनके प्रति मलयाली मन में गृहातुरतापूर्ण आकर्षण बाकी है।

ऐतिहासिक दृष्टि से अस्सी का दशक मलयाली

सिनेमा के लिए काफी महत्वपूर्ण है। इस कालखंड का मलयाली सिनेमा दो शाखाओं में विभाजित हो जाता है। एक ओर कलात्मक एवं बौद्धिक फिल्मों की धारा बहती रही, दूसरी ओर ऐक्शन को प्रमुखता देनेवाली वाणिज्यिक फिल्मों की चकाचौंध प्रदर्शित होती रही। सुपर हीरो, ऐक्शन हीरो की परिकल्पना व्यापक हो गई। उनके नाम पर फैन्स या प्रशंसकों की टोली संगठित हुई। आपस में लड़ने की दुर्वासना फैल गयी। यद्यपि बाजारू संस्कृति से निर्मित फिल्मों की स्तरीयता घट गयी फिर भी वे बॉक्स ऑफिस में एकदम हिट थी। लोकप्रियता के आधार पर सिनेमा का मूल्य विचार करने की प्रवृत्ति व्यापक हो गयी और तदनुसार नये आस्वादक वर्ग की सृष्टि हुई। अभिनेता केन्द्रित फ़िल्मी सभ्यता प्रचारित हुई। फलस्वरूप सुपर स्टार सिंड्रोम से मलयाली सिनेमा पूरी तरह प्रभावित हो गया। अभिनेता के बाहरी व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने वाले अतिमानवीय पात्रों की कल्पना लगातार होने लगी। अंततोगत्वा समकालीन मलयाली फिल्म एक उपभोक्ता उत्पाद बन गई। साथ ही उसका बाजारू मूल्य भी बढ़ गया। इसका मतलब कभी यह नहीं कि वाणिज्यपरक सिनेमा ने मलयाली सिनेमा का सत्यानाश किया।[5] प्रतिभावान अभिनेताओं एवं निर्देशकों की व्यापक उपस्थिति उसके कलात्मक मूल्य के प्रति पर्याप्त जागरूकता दिखाती रहती है।

वस्तुतः मलयाली सिनेमा में 'सुपर स्टार' की परिकल्पना अस्सी के आरंभ में हुई थी। फिल्मी आलोचक स्वर्गीय जयन को केरल के प्रथम सुपर स्टार के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं जिनका गहरा प्रभाव मलयाली सिनेमा में आज भी बना रहता है। वैसे सुपर स्टार पद के लिए सर्वथा योग्य अभिनेता हैं मम्मूटी और मोहनलाल। वे ऐसे दो प्रतिभाधनी कलाकार हैं जो सिनेमा के कलात्मक एवं वाणिज्यिक मूल्यों के बीच अद्‌भुत लय की स्थापना करते हैं। उनके सहयोग से केरल की आर्ट हॉउस मूवी और कमर्शियल मूवी दोनों सामान रूप से लाभान्वित हैं। उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति इतनी मूर्धन्य है कि उनका कर्मक्षेत्र केरल तक सीमित नहीं रहता। इनकी सृजनात्मक भूमिका अपेक्षाकृत विशाल है। हिन्दी, तमिल, कन्नड़, तेलुगु भाषायी क्षेत्रों में भी उनकी अतुल विद्वत्ता का विस्तृत परिचय हो चुका है। उल्लेखनीय बात यह है कि इन दोनों की कर्मभूमि अतिरंजन प्रधान वाणिज्यिक सिनेमा होने के बावजूद उनकी अभिनेयता का मूलाधार यथार्थवाद है। सिनेमा के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक मूल्यों के प्रति ये दोनों पर्याप्त जागरूक हैं। उन्होंने निर्माता के रूप में भी मलयाली सिनेमा को नया दिशा निर्देश प्रदान किया है। मम्मूटी और मोहनलाल द्वारा निर्मित फिल्मों में सामाजिक एवं सौदर्यमूल्यों का सही पालन हुआ है। 'कप्योप्पु' और 'वानप्रस्थम' इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

सुरेष गोपी, जयराम, मुकेश, श्रीनिवासन, मुरली, बालचंद्र मेनन, दिलीप, बिजु मेनन, फगद फासिल, दुलकर सलमान, पृथ्वीराज, इन्द्रनस, सलिमकुमार, सुराज वेनजरनमूड, निविन पोली, टोविनो थॉमस, जयसूर्या, कुञ्चाक्को बोबन, आसिफ अली, अनूप मेनन, विनित श्रीनिवासन, प्रणव मोहनलाल, सौबीन साहिर, विनायकन, जोजु जॉर्ज आदि समकालीन मलयाली सिनेमा के लोकप्रिय अभिनेता हैं। साथ ही सुहासिनी, शोभना, उर्वशी, रेवती, मंजु वारियर, मीरा जास्मिन, पद्म प्रिया, नयनतारा, नव्या नायर, काव्या माधवन, आशा शरत, पार्वती तिरुवोत्त, ममता मोहन दास, गीतु मोहन दास, नस्रिया नखिन, प्रियंका नायर, श्वेता मेनन, निमिषा सजयन, अपर्णा बालमुरली, रीमा कल्लुंकल, अनुपमा परमेस्वरन, अनश्वरा राजन, अन्ना बेन, कनि कुसृति जैसी अभिनेत्रियों की लंबी कतार भी दिखाई देती है। हरिहरन, फासिल, भद्रन, जोषी, कमल, प्रियदर्शन, सीबि मलयिल, लोहितदास, जयराज, श्रीनिवासन, हरिकुमार, रञ्जित, ब्लेसी, एम. राजीवकुमार, संतोष शिवन,

लालजोस आदि ऐसे निर्देशक हैं जो पिछले दो-तीन सालों से मलयाली सिनेमा को गतिशीलता देने के लिए कार्यशील हैं। इनके निर्देश में अनेक चर्चित और कालजयी फिल्म निर्मित हुई हैं। सिनेमा के वाणिज्यिक पहलुओं को प्रधानता देनेवाले होते हुए भी उनकी फिल्मों में सामाजिक एवं कलावादी मूल्यों की उपेक्षा नहीं हुई है। गर्व कर सकते हैं कि उनकी बहुत सी फिल्में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत हुई हैं। अनवर रषीद, आशिक अबु, रोशन आन्द्रूस, जीतू जोसफ, सच्ची, अमल नीरद, राजीव रवि, अंजली मेनन, लिजो जोस पेल्लिशेरी, अब्रीड शैन, रज्जित शंकर, दिलीश पोत्तन, मार्टिन प्रक्काट, सकरिया, समीर ताहिर, राजेश पिल्लै, अरुण कुमार अरविंद, विनीत श्रीनिवासन, सिद्धार्थ शिवा, सिद्धार्थ भरतन, खालिद रहमान आदि युवा पीढ़ि के निर्देशक हैं जो इस वाणिज्यिक परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए काफी उत्सुक हैं। वे चाहते हैं कि वैश्विक सिनेमा के संपर्क से परिमार्जित कलात्मक दृष्टिकोण की सहायता से अंतर्वस्तु की गुणवत्ता के साथ तकनीकी के अधुनाधन आविष्कारों के विन्यास से भी उनकी फिल्में लाभान्वित हो जाये।

समकालीन मलयाली सिनेमा भारतीय फिल्मी इतिहास का महती काण्ड है। भारतीय फिल्मों की मूलभुत प्रवृत्तियों का अनुसरण उसमें मिलता है। पूरे भारत सहित एशियाई सिनेमा के लिए मलयाली सिनेमा महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। नतीजतन मलयाली सिनेमा पर विश्व सिनेमा की दृष्टि पड़ रही है। केरल में ऐसे अनेक सिनेमा प्रकाशित हो चुके हैं जो अपनी विश्व स्तरीयता के कारण लोकप्रिय हो गये हैं। आजकल दुनिया भर के फिल्म वेस्टिवलों में मलयाली सिनेमा को उचित स्थान एवं आदर मिल रहा है। समकालीन मलयाली सिनेमा का संसार अनगिनत प्रतिभावान कलाकारों से समृद्ध है। केरल की युवा पीढ़ि सिनेमा के प्रति अत्यंत आकृष्ट है। उनके उत्साह में अनेक प्रयोगशील सिनेमा निर्मित हुए हैं जिनके माध्यम से अनेक युवा निर्देशक एवं अभिनेता जन्म लेते हैं। फिलहाल मलयाली सिनेमा के क्षेत्र में दो प्रकार की धाराएं प्रवाहमान हैं कलात्मक सिनेमा और वाणिज्यिक सिनेमा। बहुत से सिनेमा ऐसे भी हैं जिनका विभाजन संभव नहीं। उनमें कलात्मक तत्व की उपस्थिति के साथ लोकप्रियता के संघटक भी पाए जाते हैं। मतलब यह है कि समकालीन मलयाली सिनेमा में विश्व सिनेमा की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां बड़ी मात्रा में उपलब्ध होती हैं। समकालीन मलयाली सिनेमा की विशेषता यह भी है कि उसमें वाणिज्य सिनेमा के प्रमुख कलाकारों की व्यापक हाजिरी दिखाई देती है।

समकालीन मलयाली सिनेमा के विकास में दर्शकों की भूमिका भी सर्वप्रमुख है। चाहे छोटी या बड़ी हो, नयी फ़िल्मी कल्पनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए दर्शक दल पर्याप्त जागरूक हैं। वे सिनेमा को एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में पहचानते हैं। उनके लिए सिनेमा विशिष्ट सांस्कृतिक दायित्व को निभाने का आधुनिक कलात्मक साधन है। सिनेमा की सामजिक एवं कलात्मक दृष्टि को निर्मित करने में दर्शक दल गंभीर भूमिका अदा करते हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि कोरा यथार्थवाद समकालीन मलयाली सिनेमा की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी।[6] तदनुसार अनेक नए कलाकार अभिनय के क्षेत्र में पदार्पित हो गए जिनकी यथार्थपरक अभिनय शैली से फ़िल्मी कला लाभान्वित हुई और सुपरस्टार सिंड्रोम से मलयाली सिनेमा बच गया। आहिस्ता-आहिस्ता सिनेमा अभिजातीय परंपरा से मुक्त हुआ। आम जनता की निरीह आवाज को भी उसमें स्थान मिलने लगा। उसकी जनतांत्रिक दृष्टि व्यापक हो गयी जिसमें जनवादी मूल्यों को काफी जगह दी गयी है। समकालीन मलयाली सिनेमा की सबसे बड़ी खासियत यह है कि आजकल आर्ट हाउस सिनेमा और कमर्शियल सिनेमा के बीच का अंतर बहुत क्षीण हुआ है।

वर्तमान युग केरल के लिए 'न्यू जनरेशन' फिल्म का माहौल है। समकालीन सिनेमा में उनकी विशेष पहचान है। तकनीकी की ओर उन्मुखता, पश्चिमी फिल्मों से लगाव, यथार्थवादी अभिव्यक्ति का आग्रह, महानगरीय सभ्यता का प्रभाव, उत्तर आधुनिकता का बोध, नयी दृश्यात्मक भाषा की खोज, नये अभिनेताओं को पेश करने की विशेष रुचि, शिल्प पर ध्यान आदि न्यू जनरेशन फिल्म की अंतरंग प्रवृत्तियाँ हैं। युवा पीढ़ि के निर्देशकों एवं अभिनेताओं की सक्रिय भागीदारी इस उत्तर आधुनिक फिल्मी संस्कृति की रचना कर चुकी है। परंपरा विरोधी नये फिल्मकार सिनेमा संबन्धी पुरानी अवधारणा की नयी व्याख्या तैयार करने के लिए संकल्पबद्ध हैं। समाज के युवा वर्ग एवं छात्रों की तरफ से उनको आशातीत प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। इसका मतलब यह नहीं है कि आज के मलयाली सिनेमा पूरी तरह युवा केंद्रित हो गया है और उसमें बुजुर्गों का कोई स्थान नहीं है। दरअसल युवा शब्द का तात्पर्य युवा मानसिकता से है जो अपनी संवेदना एवं अभिव्यंजना में पर्याप्त ऊर्जा प्रसारित कर रही है।

कला के प्रयोगशील पक्ष को बनाये रखते हुए मलयाली सिनेमा की युवा पीढ़ी व्यापक सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकार को प्रधानता देती है। आज के मलयाली सिनेमा का तकनीकी पक्ष इतना अद्यतन है कि बॉलीवुड सहित भारत की सभी भाषायी फिल्मों में उनकी सक्रीय भागीदारी दिखाई पड़ती है। आखिकार हम कह सकते हैं कि मलयाली सिनेमा का बौद्धिक मंडल इतना मज़बूत है जिसके कलात्मक एवं तकनीकी परक योगदान भारतीय सिनेमा के इतिहास में नए अध्याय जोड़ दे रहा है।[6] लोकचेतना से प्रभावित होकर वह सिनेमा को आसमान से धरती पर लाने की कालोचित कोशिश कर रहा है और यथार्थपरक दृष्टि से सामजिक गतिविधियों को देखने की शिक्षा दे रहा है। सिनेमा के आशावादी परिप्रेक्ष्य को बनाये रखने में दर्शक वर्ग के ऊंचे सामाजिक विवेक और सौंदर्य बोध की उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई है जिससे समकालीन मलयाली सिनेमा का कलात्मक एवं सांस्कृतिक स्वरूप निर्मित हुआ है। आशा करते हैं कि निकटस्थ भविष्य में पश्चिमी सिनेमा के सम्मोहन से न्यू जनरेशन फिल्म मुक्त हो जाएगी और भावुकता एवं बौद्धिकता के मधुमय संगम से निर्मित, प्रखर सामाजिक बोध एवं गहन मानवीयता से ओतप्रोत नयी सौंदर्यानुभुति को वह अवश्य संप्रेषित करेगी।

संदर्भ

1. सिनिक, चित्रभूमि, सितंबर, पृ. 20-23, 1997। **2.** एस के जोसफ, केरल कौमुदी, मई, पृ. 3, 2000। **3.** विजयकृष्णन, कला कौमुदी, जुलाई, पृ. 23-24, 2013। **4.** चंद्रशेखर, कलाकौमुदी, पृ. 13-14, अगस्त, 2011। **5.** रविकुमार के. देशाभिमानी पत्रिका, पृ. 24-26, जून, 2009। **6.** विजयकृष्णनन, माध्यमम वाराद्यम, पृ. 4, मई, 2010।

हिन्दी विभाग
महाराजा कॉलेज इर्नाकुलम-682011
(केरल)
मो. 9846937252
E-mail : madhuvasudevan111@gmail.com

●

खुश रहने का यह अर्थ नहीं कि सब कुछ उत्तम है, इसका अर्थ यह है कि आपने कमियों से ऊपर उठने का निर्णय कर लिया है। – **अज्ञात**

राजस्थान के बिश्नोई सम्प्रदाय में अहिंसात्मक तत्त्व

डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़

शोध सारांश : प्रकृति के तीन घटक हैं - मानव, वनस्पति एवं मानवेतर प्राणी। मानव अपनी रक्षा करने में समर्थ है और अन्य दोनों घटक उस पर निर्भर हैं। गुरू जाम्भोजी महाराज ने इन सब तथ्यों को सम्मुख रखकर बिश्नोई पंथ के उनतीस (29) नियम बनाये थे। इनमें पर्यावरण संरक्षण का जो उन्होंने मूल मंत्र दिया, उसका सार है - 'समस्त जीवों पर दया करो और हरे वृक्ष मत काटो।' यही कारण है कि बिश्नोई लोग वन एवं वन्य प्राणियों की सुरक्षा के लिए हर समय तैयार रहते हैं। यही इस वैष्णव सम्प्रदाय की अहिंसात्मकता है। (**मुख्य शब्द** - मानव, वनस्पति, पर्यावरण, संरक्षण, वृक्ष, चाण्डाल, शिक्षा, नम्रता, क्षमा, सहनशीलता, क्रोध)।

भूमिका : 15वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में अपना विशेष महत्व रखती है। इस समय देश में उथल-पुथल मची हुई थी। ऐसे समय में भारत में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसका प्रसार राजस्थान में भी हुआ। भारत का राजस्थान प्रांत अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण अपनी पृथक ऐतिहासिक विशेषता रखता है। यहाँ के रेतीले टीलों के मध्य भारतीय संस्कृति सदैव अपने प्राचीन मूल्यों के साथ जीवित रही है जिसका वर्णन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। राजस्थान का उत्तरी-पश्चिमी भाग थार मरुस्थल के नाम से विख्यात है। इस क्षेत्र में आबादी घनी नहीं है। यह रेगिस्तानी भूमि उतनी उपजाऊ नहीं है। यह भूमि मुख्यतया जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, सीकर, चूरू, झुंझुनूं, नागौर, हनुमानगढ़ एवं गंगानगर जिलों में है। इस क्षेत्र में 15वीं शताब्दी में एक संत गुरु जाम्भोजी हुए थे, जिन्होंने इस मरुस्थल से लोगों को अकाल के समय अन्यत्र स्थानान्तरण हेतु रोका। उनकी आवश्यकता के अनुसार सबको अनाज दिया था। गुरुजी ने लोगों को अच्छा आचरण करने, जीव हत्या न करने और पर्यावरण संरक्षण का संदेश दिया था।

जांभोजी का जीवन परिचय

बिश्नोई सम्प्रदाय के आदि पुरुष जांभोजी का अवतरण भाद्रपद कृष्ण अष्टमी 1451 ई. को पीपासर (नागौर) में पंवार वंशीय राजपूत लोहटजी तथा हांसा देवी के पुत्र के रूप में हुआ था। बाल्यावस्था से ही वे मननशील और अत्यन्त अल्पभाषी थे। परन्तु यदा-कदा इनके मुंह से निकलने वाली बातें लोगों को मस्तिष्क चकरा देती थी। बचपन से ही गौ चराने हेतु जंगलों में भ्रमण करते और ध्यान-मनन में रहने के कारण उन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प

किया। सोलह वर्ष की अवस्था में जांभोजी का सद्गुरु से साक्षात्कार हुआ। 1483 ई. में माता-पिता के निधनोपरान्त गृह त्याग कर समराथल (बीकानेर) रहने लगे। 1485 ई. में इसी स्थान पर इन्होंने अपने बिश्नोई मत का प्रवर्तन किया।[1] समराथल में निवास करते हुए ज्ञानोपदेश करते हुए 1526 ई. में मार्ग शीर्ष कृष्ण नवमी को जांभोजी ने महाप्रयाण किया। यह स्थान 'मुकाम' के नाम से जाना जाता है और यहीं इनके समाधि मन्दिर का निर्माण किया गया। जांभोजी वस्तुतः बहुमुखी प्रतिभायुक्त महापुरुष थे। उनके कार्य क्षेत्रों में धर्म तथा समाज प्रमुख थे। एक सत्यनिष्ठ मानवतावादी एवं जीव मात्र के प्रति करुणा की उत्कृष्ट भावना से ओत-प्रोत होकर अहिंसा की नींव डाली।[2]

जांभोजी का व्यक्तित्व और कृतित्व

जांभोजी एक महान चिन्तक, प्रेरक संत तथा समाज सुधारक थे। उन्होंने सभी पारलौकिक (आध्यात्मिक) एवं लौकिक (भौतिक) विषयों पर गहन विचार विमर्श किया था। ईश्वर में प्रबल विश्वास था। ईश्वर के विभिन्न प्रचलित नामों में से उन्होंने प्रायः विसन (विष्णु) नाम का ही प्रयोग किया। सम्पूर्ण सृष्टि के कण-कण में ईश्वर विद्यमान है। आत्मा की अमरता और मृत्यु की अनिवार्यता को माना है। आत्मा, जगत एवं जन्म-मरण से परे तत्त्व है। विष्णु-जप पर बल देते थे। जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने के लिए जांभोजी ने विष्णुजप का उपदेश देते हुए कहा कि विष्णु का नाम स्वयं विष्णु जितना ही शक्तिशाली है। सत्संग में आस्था थी, अन्य सन्तों की भांति जांभोजी का भी विचार था कि नाम जप की साधना में सत्संग आवश्यक साधन है। इसका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि अच्छा रंग चढ़ने पर जैसे कोई कपड़ा अधिक मूल्यवान हो जाता है वैसे ही सत्संग द्वारा मनुष्य भी उत्थान प्राप्त करता है। गुरु के महत्व का वर्णन किया है, साधन पथ में गुरु के दिशा दर्शन को आवश्यक माना है, तभी मोक्ष संभव है। मूर्ति पूजा का विरोध करते थे। वे शिल्पियों के पैरों तले दबाकर बनाई जाने वाली काठ और पाषाण की मूर्तियों का पूजन करने और उनसे मोक्ष मांगने वालों को अल्प बुद्धि वाला बतलाते थे। बाह्याचारों में अनास्था रखते थे। देह पर भस्म लेपन, केश मुंडवाना, कड़ा-कुण्डल धारण करने, लम्बी-लम्बी जटाएं बढ़ाना, घर गृहस्थी त्याग कर गृहस्थ के समान आचरण करना, भूत प्रेतादिक की साधना करना जैसे समस्त पाखण्डों पर जांभोजी ने कठोर प्रहार किये। धर्म के नाम पर पशु-वध किसी भी रूप में अनुचित कहा। जाति-विभेदों पर प्रहार करते थे। जांभोजी ने निर्देशित किया कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके जन्म अथवा कुल से नहीं अपितु कर्मों से ही सिद्ध होती है, समाज में व्याप्त अस्पृश्यता भला कैसे मान्य हो सकती है। सत्कर्मों का उपदेश दिया। जांभोजी ने सभी मिथ्या नातों और बन्धनों को त्यागकर मुक्ति पाने का उपदेश दिया है।[3]

गुरु जाम्भोजी ने एक साधारण किसान से लेकर राजा-महाराजाओं को उपदेश दिया था। उनके उपदेशों से धार्मिक क्षेत्र में जो क्रांति आई थी, उसका प्रभाव सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी हुआ था।[4] गुरु जाम्भोजी ने कहा किसी के पंथ की निन्दा करना, किसी के जीवन में दखल देना, ये काम चाण्डाल के होते हैं। गुरु जाम्भोजी ने जीविका के लिए हाथ से काम करने की शिक्षा दी थी। गुरु जाम्भोजी के समय मुस्लिम समाज में गाय के मांस का प्रयोग एक आम बात थी। गाय के अतिरिक्त वे बैल, भेड़, बकरियों को भी मारने लगे थे। तब उन्होंने जीव हिंसा का विरोध किया था।[5] गुरु जाम्भोजी जन्म से ही एकान्तप्रिय, सहज समाधि में ध्यान लगाने वाले एक योगी पुरुष थे। गूंगे का अर्थ है जो न बोलने वाला, इस अवस्था को देखकर पीपासर के निवासी उन्हें 'गूंगिया' कहते थे।

जाम्भोजी वनस्पति के रक्षक थे। उन्होंने वनों को काटने की मनाई की थी। गुरु जांभोजी उमा का मायरा भरने अक्षय तृतीया 1515 ई को रोटू (नागौर) आये

थे। उमा के मायरे पर रोटू (नागौर) में खेजड़ियों का बाग लगाया था जो आज भी है। उन खेजड़ियों पर बैठने वाली चिड़ियाएँ भी अपना चुग्गा अन्य स्थानों से चुगती थी। वे पक्षी लोगों की फसलों को हानि नहीं पहुंचाते थे केवल वे यहां विश्राम करते थे। ऐसे स्थानों में वन्य प्राणियों एवं पक्षियों को संरक्षण मिलता था। जाम्भोजी ने पशुधन के रक्षार्थ अमर थाट/ संरक्षित बाड़े बनाये थे। उन्होंने हिंसक लोगों को शिकार की मनाई की थी। गुरु जाम्भोजी ने राजा-महाराजाओं से शिकार मनाही के ऐसे अनेक वचन एवं परवाने बिश्नोइयों को दिलाये थे। उन्होंने जीव हिंसा न करना आदि बातों को बिश्नोई पंथ की आचार-संहिता में आवश्यक रूप से शामिल कर दिया था। गुरु जाम्भोजी ने कहा था- गौ आदि पशुओं को संरक्षण देने से उपकार होता है।[6] जाम्भोजी की वाणी भक्ति परक रचना है, जिसमें विष्णु के सामीप्य लाभ और आत्म तर्पण की भावना है। उनका मानना है कि मनुष्य अपने दैनिक कार्यक्रम में ही भक्ति कर सकता है। उनकी भक्ति के मुख्य अंग हैं विष्णु नाम का स्मरण, दान की महिमा, जीव दया की प्रधानता, नम्रता, क्षमा और सहनशीलता। गुरु जाम्भोजी ने विष्णु-विष्णु का जप करते रहने को तथा काम, क्रोधादि को वश में करने को ही जीवन तत्त्व माना है।[7]

बिश्नोई सम्प्रदाय का उद्भव

जांभोजी ने एक नवीन बिश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। जिसका नामकरण ही सम्प्रदाय के आधारभूत नियमों की संख्या 29 (बीस + नो अर्थात् बीसनोई) के अनुसार किया गया। जांभोजी द्वारा चलाये गये इस बिश्नोई सम्प्रदाय के नियमों की पालना प्रत्येक बिश्नोई सम्प्रदाय के सदस्यों द्वारा करना अतिआवश्यक है। **बिश्नोई सम्प्रदाय के 29 नियम :** 1. नित्य प्रातः स्नान करना। 2. जनन शौच 30 दिन तक मानना। 3. रजस्वला स्त्री को 5 दिवस तक गृह कार्यों से परे रखना। 4. शील का पालन। 5. सन्तोष को अपनाना। 6. बाह्य एवं आभ्यन्तरिक पवित्रता रखना। 7. तीन समय संध्या उपासना करना। 8. संध्या समय आरती और हरि गुणगान करना। 9. निष्ठा और प्रेम से हवन करना। 10. जल, दूध और ईंधन छानबीन कर उपयोग में लाना। 11. वाणी का संयम करना। 12. क्षमा और दया धारणा करना। 13. चोरी का त्याग। 14. निंदा का त्याग। 15. झूठ का त्याग। 16. वाद-विवाद का त्याग। 17. अमावस्या को व्रत रखना। 18. विष्णु का भजन करना। 19. जीव दया का पालन (न स्वयं हिंसा करें और न किसी को करने दें)। 20. हरे वृक्ष नहीं काटना। 21. काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का दमन करना। 22. स्वयं के हाथ से रसोई बनाना। 23. परोपकारी पशुओं की रक्षा करना। 24. बैल को बधिया नहीं करवाना। 25. अफीम का त्याग करना। 26. तम्बाकू का त्याग करना। 27. भांग का त्याग करना। 28. मद्य का त्याग करना। 29. नील का त्याग करना। इन नियमों के अतिरिक्त भी कुछ नियम जैसे विवाह में फेरे न लेना, चोटी न रखना, शवों को समाधिस्थ करना, लाख के अतिरिक्त अन्य प्रकार का चुड़ा न पहनना और ऊन को बहुत पवित्र मानना इत्यादि हैं।[8]

पर्यावरण संरक्षण

गुरु जाम्भोजी ने हरे वृक्ष काटने की मनाई की थी। वनों की रक्षा करना प्रत्येक प्राणी का परम कर्तव्य है। कवि वील्होजी ने बताया था कि हरे वृक्ष काटने से मनुष्य कुम्भी पाक नर्क में पड़ता है।[9] हरा वृक्ष कभी नहीं काटना चाहिए क्योंकि वह सब प्राणियों के जीवन का मूल है। इसीलिए तन, मन, धन से वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए। वृक्षों की रक्षा से मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की भी रक्षा होगी। ईंधन के लिए हरे वृक्षों को काटना अनुचित है क्योंकि इनमें नाना प्रकार के जीव निवास करते हैं। मनुष्य मात्र को चाहिए कि वह अपने स्वार्थ के लिए भी कभी हरे वृक्षों को न काटे और न किसी को काटने देवें। जोधपुर के महाराज अजीत सिंह द्वारा राज-काज के लिए खेजड़ी वृक्षों को काटने का आदेश दिया गया। वृक्षों को काटने से रोकने के

लिए 1730 ई. में जोधपुर के खेजड़ली गांव में वृक्षों के रक्षार्थ बिश्नोई सम्प्रदाय के महिला और पुरुषों (363) ने अपना बलिदान दिया। यह इतिहास की पर्यावरण संरक्षण की बहुत बड़ी घटना है।

इनकी ऐतिहासिक कथाओं में विशेष रूप से वृक्षों एवं वन्य प्राणियों के लिए आत्म-बलिदान की भावना एवं उसकी प्रणीति का वर्णन किया गया है। मानव, पेड़-पौधे, पशु, वायु, जल, भूमि सब मिलकर पर्यावरण बनाते हैं। प्रकृति ने इन सबकी रचना और इनकी मात्रा इस तौर तरीके से संजोई है कि पृथ्वी पर एक संतुलित जीवन रह सके। उन्होंने लोगों में पर्यावरणीय चेतना विकसित की। सच्चे अर्थों में वे पहले पर्यावरणवादी थे। गुरु जाम्भोजी के इन पर्यावरणीय नियमों के कारण ही बिश्नोई लोग अपने गांवों की सीमा के अन्तर्गत हिरण अथवा अन्य किसी भी पशु का वध नहीं करने देते। इनकी इसी दृढ़ता के फलस्वरूप इनके गांवों के अंतर्गत शिकार, पशु वध एवं खेजड़ी की कटाई, राज्यादेश द्वारा पूर्ण वर्जित कर दिये गये।[10]

15वीं शताब्दी में गुरु जाम्भोजी ने मरुस्थल में पर्यावरण संरक्षण की एक मुहिम छेड़ी। अपने शिष्यों के साथ उन्होंने पंथ को बहुआयामी 29 सिद्धान्त दिये जो प्रकृति के पांचों तत्वों से सम्बन्धित हैं। इनमें अहिंसा का सिद्धान्त सबसे प्रमुख है जो पर्यावरण संरक्षण का आधार है। जब हिंसा नहीं होगी तो वन्य प्राणियों को संरक्षण मिलेगा। विश्नोई पंथ के लोगों ने पेड़ों एवं वन्य प्राणियों को बचाने के लिए 15वीं शताब्दी से ही एक पर्यावरणीय आन्दोलन छेड़ रखा है। इसके लिए अनेक बार बलिदान दिये हैं। आज विश्नोई पंथ के ये लोग पर्यावरणीय इतिहास का प्रथम अध्याय बन गये हैं। विश्नोइयों ने वृक्षों को जीवित रखने के लिए रामासड़ी, तिलवासणी, पोलावास एवं खेजड़ली में अपने बलिदान दिये थे।[11] पर्यावरण संरक्षण के लिए विश्नोई सम्प्रदाय के 29 नियमों में 19 वां नियम है -हरे वृक्षों को नहीं काटना। समस्त जीवों पर दया करो और हरे वृक्ष मत काटो। 'जीव दया पाठणी, रुखं लीलो नहीं घोवे' **हरा वृक्ष नहीं काटना, यह सबका मन्तव्य। रक्षा में तत्पर रहे, जान यही कर्तव्य।**[12]

वृक्षों के लिये विश्नोईयों के बलिदान निम्नानुसार है- **1. रेवासड़ी में बलिदान** -1604 ई. में जोधपुर में करमां और गोरा विश्नोई रहती थी। ठाकुरों ने खेजड़ियों को काटना चाहा, तो इन स्त्रियों ने अपना बलिदान देकर उनकी रक्षा की थी। **2. तिलवासणी का बलिदान** - जोधपुर जिले के तिलवासणी गांव में हरे वृक्षों को काटने के लिए कुछ सैनिक आये उन्हें रोका तो वह नहीं माने, तब खीवणी देवी, नेतू देवी तथा मोटाराम खोखर ने वृक्षों के रक्षार्थ अपने प्राण त्यागे। **3. पोलावास का बलिदान** - मेड़ता परगने के पोलावास गांव में होली जलाने के लिए पोलावास के जंगलों से खेजड़ी के वृक्ष काट डाले। तब बूचोजी विश्नोई ने वृक्षों के रक्षार्थ स्वेच्छा से अपने प्राण दिये। **4. खेजड़ली का बलिदान** - इस गांव में खेजड़ी के वृक्ष अधिक होने के कारण इसका नाम खेजड़ली पड़ा। खेजड़ी के वृक्षों को संरक्षित करने के लिए सन् 1778 में यह जमीन खरीदी थी। ताकि उन खेजड़ियों को कोई काट न सके। इसी नियम के रक्षार्थ खेजड़ली गांव के 363 स्त्री-पुरुषों ने अपने प्राणों की आहूति दी थी।[13]

विश्नोई वन एवं वन्य प्राणियों की सुरक्षा के लिये हर समय तैयार रहते हैं। कोई भी शिकारी इनके गांवों में शिकार करने की हिम्मत नहीं कर पाता है। इसका उदाहरण अभिनेता सलमान खान द्वारा काले हिरण का शिकार करना और विश्नोई सम्प्रदाय द्वारा उसका विरोध करना है। इस विरोध के कारण ही रेगिस्तानी क्षेत्र होने के बावजूद भी इन क्षेत्रों में पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों की अधिकता है। वृक्ष रक्षार्थ विश्नोईयों का नारा था - **'सिर साटे रुखं रहे, तो भी सस्तो जाण।'** इसका अर्थ है- सिर कटवाने के बदले पेड़ बचे तो भी सस्ता है। **सोम, अमावस आदितवारी-3, कायं काटी वंणरायौ?-4। अर्थ** - गुरु जम्भेश्वर जी महाराज का प्रकृति से सर्वाधिक स्नेह था। उनकी दृष्टि में जीव-

जन्तुओं की तरह ही वनस्पति जगत भी जीवन्त तत्त्व है। वे वृक्ष मात्र को कष्ट नहीं पहुंचाते थे। जैसा कि प्रकृत वचन में हमें मिलता भी है। वे स्वयं कहते हैं - **हे प्राणियों, तुमने सोमवार, अमावस्या और रविवार के दिन हरे वृक्षों की कटाई क्यों की है?**[14] **चोरी, निंदा, झूठ, बरजीयो, बाद न करणो कोय।**[15]

अहिंसा - गुरु जाम्भोजी ने अपनी वाणी में अनेक स्थानों पर अहिंसा का जिक्र किया है। वृक्ष को काटने की मनाई की थी। **'रुखं लीला नहीं घावै'**[16] गुरु जाम्भोजी अहिंसा के विषय में कहते हैं - जो चर फिर कर आती है और सहज से दूध देती है। जिसके दूध की खीर बनती है, उसका गला तुम क्यों काटते हो। तुम तो पढ़-लिखकर भी खाली हो।[17] गुरु जाम्भोजी मुस्लमानों की हिंसा प्रवृति को देखकर कहते हैं कि तुम किस कारण गऊ की हत्या करते हो? यदि गऊ हत्या में लाभ था तो करीम ने क्यों गायें चराई थी? वह भी उनकी हत्या करता, उनका पालन नहीं करता। गुरु जाम्भोजी बैल का महत्व बताते हुए कहते हैं- बैल किसान के लिये भाई से बढ़कर हैं, फिर उसका गला तुम क्यों काटते हो?[18] **रे भाई बिना गुन्हें तुम जीव हत्या क्यूं करते हो? इसका हिसाब तुम से स्वयं खुदाबन्द लेंगे।** गुरु जाम्भोजी काजी को कहते हैं- हे काजी तू मुहम्मद-मुहम्मद मत कर, मुहम्मद हक की कमाई खाने वाले थे और तुम मरे हुए जीवों को खाने वाले हो।[19] बिश्नोई सम्प्रदाय में निम्न नियमों में अहिंसात्मक मूल्य है - 1. जीवों पर दया रखना, 2. थाट अमर रखना (22), 3. बैल (बछड़े) को बधिया न करना (23), 4. मांस नहीं खाना (28), 5. हरे वृक्ष नहीं काटना (19)[20]।

शील - सभी प्राणियों के प्रति शालीनता तथा शिष्टाचार के व्यवहार को शील कहते हैं। शील धर्म का प्रमुख अंग है, यह चरित्र के रूप में भी प्रयोग हुआ है। गुरु जाम्भोजी की वाणी में अनेक स्थानों पर यह शब्द आया है। 29 धर्म-नियमों के कवित्त में कहा है **'सेरा करो स्नान, शील संतोष सुचि प्यारो।'** गुरु जाम्भोजी कहते हैं गुरु सहज और शीलवान है, उसने सहज रहनी सिखाई है। उसका मन स्थिर है और यह संसारी से निरपेक्ष है। संयम और शील से अच्छे कर्मों की प्रतीती होती है।[21]

क्षमा - महान व्यक्ति की पहचान क्षमा है। जो शक्तिशाली होते हुए भी अपराधी को क्षमा कर देता है, उसकी कीर्ति संसार में फैलती है। बिश्नोई धर्म के 29 नियमों में कहा है कि क्षमा दया हिरदै धरो, गुरु बतायो जाण। जो अत्यन्त विनीत और क्षमाशील है, काम-क्रोधादि जिसके बस में है, जो सत्य कार्य करता है जिसको सतगुरु ने सीख दे दी है, वही अपने घर जाता है।[22]

दया - धर्म का मूल दया है और पाप का मूल अभिमान है। जिन लोगों के मन में दया-कृपा नहीं है, उनके सभी कर्म उलटे हैं।[23] जो प्राणियों पर जोर करेगा, दया नहीं करेगा, उसका अंतिम समय दुखदायी होगा। जो मन, वचन और कर्म से दया और धर्म का पालन करता है वही ब्रह्मचारी है। वही ब्रह्मस्वरूप का बोध कर सकता है। **'सबद शुकल हंस'** में कहा है कि दया रूप से हम अभयदान देते हैं।[24]

संतोष - संतोष से मन को प्रसन्नता मिलती है। मन के अन्दर व्याप्त लोभ का नाश होता है। उसे एक प्रकार से आत्म सुख मिलता है। वर्तमान समय में मनुष्य में इस गुण के न होने से उसकी आवश्यकताएं बढ़ती ही जा रही हैं। गुरु जाम्भोजी ने अपने प्रथम सबद में ही कहा है- **'गुरू आप संतोषी, अवरां पोखी'** अर्थात हमारा गुरु स्वयं तो संतोषी है ही, वह अन्य लोगों का पोषण करने वाला भी है।[25] संतोष की इसी भावना को प्रगट करते हुए जाम्भोजी कहते हैं- **'कुण जाणै म्है सूंव क दाता।'** वे पुनः असंतोष की तुलना बिल्ली के व्यवहार से करते हैं।[26]

दान - गुरु जाम्भोजी ने अपनी वाणी में दान की महत्ता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने दान के दो प्रकार बताये हैं - **'मनसुखी और गुरमुखी।'** कर्ण ने मनमुखी (सकाम भाव) होकर दान दिया था। इस

कारण वह आवागमन के चक्र में पड़ा रहा। विदुर ने गुरुमुखी (निष्काम भाव) होकर दान दिया था। अतः उसे बैकुण्ठ वास मिला था।[27] जाम्भोजी ने बिश्नोई पंथ के लोगों को अपनी सम्पति में से 1/10 भाग दान करने को कहा था। उन्होंने स्वयं अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी थी। गुरु जाम्भोजी ने दान सुपात्र को देने को कहा है। दान देने से बीज अमृत के समान फल-फूल देते हैं। थोड़े में से भी थोड़ा दान देना चाहिए, होते हुए ना नहीं करना चाहिए।[28]

परनिन्दा - किसी दूसरे के अवगुणों का वर्णन उसकी अनुपस्थिति में करना ही परनिन्दा है। सच्चा मित्र वही है, जो अपने अवगुणों का व्याख्यान सबके सम्मुख करता है और अपने मित्रों के गुणों की प्रशंसा करता है। बिश्नोई धर्म के नियमों में कहा गया है कि **'चोरी, निन्दा, झूठ, बरजीयो, बाद न करणौ कोय।'** गुरु जाम्भोजी ने परनिन्दा को छोड़ने का संदेश दिया है।

वाद-विवाद - झूठे वाद-विवाद के फलस्वरूप झगड़े-फसाद होते हैं। इससे मन की शांति भंग होती है। जाम्भोजी कहते हैं यह संसार वाद-विवाद में फंसा हुआ है और वाद-विवाद से ही दानवों का नाश हुआ था।[29] जो भ्रमी लोग वाद-विवाद में भूले हैं, वे जीव दया का पालन नहीं करते। जाम्भोजी कहते हैं- **हे प्राणी! तू वाद-विवाद से दूर रह और मनहठ तथा अहंकार छोड़ दे।**[30]

परहित - संसार में परोपकार ऐसे करना चाहिए, जैसे बादल निःस्वार्थ भाव से वर्षा करता है। परोपकार की भावना स्वाभाविक प्रेम से और सहज रूप से होनी चाहिए, जैसे रुधिर से दूध की उत्पत्ति होती है।[31] इन नैतिक नियमों के अतिरिक्त जाम्भोजी ने 7 संयम और ईमान रखने, निर्मल वाणी बोलने, होम करने, अच्छी कमाई करने पर जोर दिया था। उनका मानना था कि मनुष्य को बुरी बात को अनसुनी और बुरी चीज को अनदेखी करनी चाहिए।[32] इसके साथ ही उन्होंने **काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि अजरों को जरने (बस में करना) तथा अमल, तम्बाकू, भांग, मद्य और मांस न खाने पर बल दिया था।**[33]

दुष्ट पुरुषों के ताड़न, अपमान और कटु वचनों को सहन करने का नाम क्षमा है। क्षमा निर्बल पुरुषों का रक्षक और बलवानों का भूषण है। जाम्भोजी ने बताया था कि यदि कोई क्रोध में आये तो भी उसे क्षमा कर दो। स्वयं उसके सामने पानी के समान ठण्डे हो जाओ।[34] जिन मनुष्यों में दया विद्यमान नहीं, उनकी शिक्षा-दीक्षा, दान, तप और ध्यान सब व्यर्थ है। किसी अन्य की वस्तु को धोखे से ले लेना ही चोरी है। गुरु जाम्भोजी ने चोरी करना मना किया था। एक जाम्भाणी साखी में लिखा है- **'पर निन्दा पापा सिरै, कांय भूल उठावै भार।'**[35] कवि वील्होजी ने ऐसे गांव में जाने को मना किया था, जहां के लोग निन्दा करते हैं। जाम्भोजी ने त्रेता युग के हरिश्चन्द्र के सत्य की प्रशंसा की थी। सत्य बोलने से जन्म सफल हो जाता है। झूठ बोलने पर जीव पर अकर्म का भार लगता है। व्यर्थ के विवाद से बचने के लिए हमें अपनी जीभ को बस में रखनी चाहिए।[36] गुरु जाम्भोजी मुस्लमानों को चेताया- तुम तो केवल तकना जानते हो, उस प्राणी की पीड़ा नहीं जानते हो, तुम बिना किसी ज्ञान के ही नमाज पढ़ते हो। हे प्राणी तुम बिना किसी गुनाह के जीवों को क्यों मारते हो? हे मुल्ला, हे काजी, तुममें अपवित्र कौन है? उन्होंने पुनः कहा जिस धर्म से जीवों की रक्षा होगी, उस धर्म से बहुत ही कार्य सिद्ध होंगे।[37]

बिश्नोई सम्प्रदाय में थाट अमर रखना महत्त्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि बकरी और भेड़ परोपकारी जीव है। जो इनकी रक्षा करता है वही बुद्धिमान है। गाय, बछड़ा और बैल आदि को कसाइयों को नहीं बेचना चाहिए। इसी का उदाहरण है कि गुरु जाम्भोजी ने रावल जैतसी को भेड़, बकरियां आदि जीव न मारने और उन्हें अमर छोड़ने का संदेश दिया था। मारवाड़ की एक सनद परवाना बही में खटीक, बावरी, थोरी आदि की राज्य में ऐवड़ (भेड़-बकरियां) बेचने की मनाई की गई है ताकि वे जीव हिंसा न कर सके।[38] थाट पशुओं की वंश वृद्धि एवं संरक्षण का

अच्छा साधन था। जाम्भोजी ने स्वयं कहा था- **हे क्रूर लोगों तुम क्या भेड़-बकरियों को मारते हो? उनके सूल चुभने से उतनी ही पीड़ा होती है जितनी पीड़ा मनुष्य को होती है।**[39] मनुष्य को किसी का भी मांस भक्षण करना उचित नहीं है। सब प्रकार के पक्षियों पर दया करना मनुष्य का परम धर्म है। न उनको मारो और किसी को मारने दो। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव उनकी रक्षा करता रहे। गुरु जाम्भोजी ने सबको संदेश देते हुए कहा था- जो जीव हत्या करके उनका मांस खाते हैं वह बहुत बुरा है। जो तूने इस संसार में किया, वही तुम्हारे आगे काम आयेगा।

उपसंहार - गुरु जाम्भोजी के समय मरुभूमि में मुस्लिम अनुयायी हिन्दुओं को उनका मत स्वीकार करने को बाध्य कर रहे थे साथ उस समय मुस्लिम मत में गाय, बैल, बकरा, हिरण आदि का वध करने की स्वीकृति होने से वहां जीव हिंसा भी बढ़ रही थी। लेकिन जाम्भोजी की वाणी से प्रभावित होकर कई मुस्लिम शासकों ने भी जीव हिंसा त्याग दी। आपने जीव हिंसा की मनाही करके वन्य प्राणियों को संरक्षण दिया। इस तरह गुरु जाम्भोजी महाराज ने एक अहिंसक सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया था। नैतिक पक्ष के तहत सत्य, अहिंसा, शील, क्षमा, दया, संतोष, दान आदि अनेक पक्षों को बहुत ही सरल भाषा में प्रतिपादित किया। **'विष्णु विष्णु भज रे प्राणी, पैंके लाख उपाजू। रतनकाया बैकुण्ठे बासो, तेरा जरा मरण भय भाजू।।'** विष्णु जप को सबके लिये एक समान परमावश्यक कर्तव्य मानकर उसे सर्वाधिक महत्व दिया। उनका मूलमंत्र था- हृदय में विष्णु का नाम जप करो और हाथ से कार्य करो। गुरु जांभोजी विष्णु के विषय में बताते हैं- विष्णु शब्द यह अन्य हिन्दू धर्मावलम्बियों द्वारा मान्य त्रिदेव में से एक नहीं है ना ही यह शेषनाग की शैय्या पर विराजमान विष्णु है, बल्कि यह तो निराकार निर्गुण परमतत्व है। उनका सन्देश है - हे प्राणी, तू इस जीवन की मुक्ति के लिए विष्णु का स्मरण कर।

संदर्भ

1. माहेश्वरी हीरालाल, जांभोजी बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, भाग 1. पृ. 233। **2.** शुक्ल, दिनेश चन्द्र ओंकार नारायण सिंह, राजस्थान की भक्ति परम्परा एवं संस्कृति, पृ. 50, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 1992। **3.** शुक्ल दिनेश चन्द्र, ओंकार नारायण सिंह, राजस्थान की भक्ति परम्परा की पृष्ठभूमि. पृ. 72, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर। **4.** 'थे तक जाणो पौड़ न जाणो' जम्भसार (प्रथम खण्ड) शब्दवाणी स्वामी ईश्वरानन्द भाषा टीका सहित, प्रकाशन स्वामी विद्यानन्दजी कानपुर। **5.** थे बिन ही गुन्हें जीव क्यू मारो, पं.बं. पो. ग्रन्थ ज्ञान, पत्र 2021। **6.** जम्भसागर, शब्द 66। **7.** जम्भगीता, शब्द 15। **8.** वही, पृ. 73। **9.** वील्होजी की वाणी, पृ. सं. 246। **10.** वही. पृ. सं. 241। **11.** वही, पृ. सं. 245। **12.** वील्होजी की वाणी, कृष्ण लाल बिश्नोई, पृ. 246। **13.** बिश्नोई कृष्णलाल, पेड़ों के लिए महान बलिदान, राष्ट्रदूत, 04.07.1982। **14.** बिश्नोई किशनाराम जम्भवाणी-मूल संजीवनी व्याख्या, गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार, पृ. 21। **15.** 29 धर्म नियम का कवित। **16.** कां काटी वंणरायो, जम्भीगीता, सबद-7। **17.** जम्भगीता, सबद-8। **18.** वही, सबद-9। **19.** वही, सबद-12। **20.** डॉ. कृष्णलाल विश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ का इतिहास, पृ. 100। **21.** सहजे सीले सजह पतीना। जम्भगीता, सबद-21। **22.** जम्भगीता, सबद-23। **23.** वही, सबद-18। **24.** दया रूपी म्हे आप बखांणा। वही, सबद-62। **25.** डॉ. कृष्णलाल विश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ का इतिहास, पृ. 88। **26.** बिल्ली की इन्द्री संतोष न होयबा किसन चिरत विणी। वही, सबद-12। **27.** परमानन्द वणियाठ का पोथा, ग्रंथ ज्ञान, सबद-28। **28.** वही, सबद-53। **29.** जम्भसागर, सबद-21, पृ. 292। **30.** ए. ब. प्रो. ग्रंथ ज्ञान, सबद-62। **31.** वही, सबद-68। **32.** जम्भगीता, सबद-103। **33.** अमल तमांखू भांग मद्यमांस, सूं दूर भागै, वही, खनियम कवित। **34.** जो कोई आवै हो हो कर, आप ज हुइयै पाणी। **35.** ए. ब. प्रो. ग्रंथ ज्ञान, पत्र-2। **36.** बील्होजी की वाणी, पृ. 230। **37.** बील्होजी-कथा जैसलमेर की, वही, पत्र-170-73। **38.** सनद परवाना जोधपुर, वही 32, पत्र-74, सन् 1785। **39.** शिरि ईश्वरानन्द, जभसागर, सबद-8, पृ. 11।

सह-आचार्य, अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं-341306 (राजस्थान)
मो. 9829740007
E-mail : ravindrachhapara@gmail.com

गुरुवाणी में कृष्ण

डॉ. प्रिया सूफी

पंजाब और पंजाबी की अपनी विशिष्ट ज्ञान विरासत है। वेदों की ऋचाएं इस भूमि पर प्रकट हुई तो गुरुवाणी ने भी यहीं से संसार को चानण किया है। गुरु नानकदेव सिक्खों के प्रथम गुरु हैं। परंतु, व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो गुरु नानक देव संपूर्ण मानवता के गुरु हैं। उनके जन्म पर कहा गया : गुरुनानक प्रगटिया, मिटी धुंध जग चानण होइया। (गुरुजी के जन्म से भ्रम की धुंध का नाश हुआ और संसार में प्रकाश फैला।) गुरुजी की वाणी को धुर दी वाणी यानि अचल, परमात्म की वाणी कहा जाता है।

उनकी वाणी में पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को नाना प्रकार से वर्णित किया गया है। एक बंद है : **घडिया सभै गोपिया, पहर कन्ह गोपाल...।** इसका आशय है कि एक घड़ी जो 48 मिनट के बराबर होती है, वह गोपी है और पहर जो कि दिन का 8वां हिस्सा है, वह श्रीकृष्ण स्वरूप है। इस प्रकार अगर देखें तो पहली पातशाही श्री गुरु नानक देव जी की वाणी में पांच शब्दों में श्री कृष्ण जी का स्मरण देखने को मिलता है।

गुरु नानक देव जी के अलावा भी अन्य गुरु साहिबान ने श्रीकृष्ण को अपनी वाणी में स्थान दिया है। व्यापक रूप से देखें तो संपूर्ण श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 17 बार श्री कृष्ण जी का ज़िक्र मिलता है। यथा :

तनु मनु सउपउ क्रिसन परीति।।5।।
(पन्ना 413, पंक्ति 12, महला 1)।
जुज महि जोरि छली चंद्रावलि कान्ह क्रिसनु जादमु भइआ।।
(पन्ना 470, पंक्ति 6, महला 1)।
सोवंन ढाला क्रिसन माला जपहु तुसी सहेलीहो।।
(पन्ना 567, पंक्ति 10, महला 1)।
कलि कलवाली सरा निबेड़ी काजी क्रिसना होआ।।
(पन्ना 903, पंक्ति 2, महला 1)।
गुरमति क्रिसनि गोवरधन धारे।।
(पन्ना 1041, पंक्ति 6, महला 1)

गुरुओं की वाणी में पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं के उदाहरण सहित स्मरणीय हैं। गुरु अंगददेव ने अपनी रचनाओं में एक बार श्रीकृष्ण का उल्लेख किया है : **एक क्रिसनं सरब देवा देव देवा त आतमा (पन्ना 469, पंक्ति 15, महला 2)।** गुरुअमरदास द्वारा अपनी वाणी में एक

बार श्रीकृष्ण को वर्णित किया गया है : **मनु तनु निरमलु अति सोहणा भेटिआ किसन मुरारि।। (पन्ना 488, पंक्ति 14, महला 3)।** गुरु रामदास ने अपनी वाणी में चार बार श्री कृष्ण जी को वर्णित किया है : **क्रिसनु बलभद्र गुर पग लगि धिआवै।। (पन्ना 165, पंक्ति 6, महला 4)। दीना दीन दइआल भए है जिउ क्रिसनु बिदर घरि आइआ।। (पन्ना 1191, पंक्ति 14, महला 4)। कांसी क्रिसनु चरावत गाऊ मिलि हरि जन सोभा पाई।।2।। (पन्ना 1263, पंक्ति 8, महला 4)। बिदर दासी सुतु छोक छोहरा क्रिसनु अंकि गलि लावैगो।।2।। (पन्ना 1309, पंक्ति 14, महला 4)।** गुरु अर्जुनदेव द्वारा श्रीकृष्ण का उल्लेख एक बार किया गया है और यह उल्लेख सुन्दर संग वाला है : **गुरमुखि सगी क्रिसन मुरारे।। (पन्ना 98, पंक्ति 9, महला 5)।**

साहिबे कमाल गुरु गोबिंद सिंह के समय की कुछ पुस्तकों का उल्लेख मिलता है, जिसके विषय में विवाद है कि संभवतः यह रचनाएं गुरु साहिब की न हो कर उनके दरबारी कवि किशनलाल की हों। इस विषय में डॉ. रत्न सिंह जग्गी ने स्पष्टतः इन रचनाओं को गुरु गोविंद सिंह की रचना मानने से इनकार किया है। सारा सिक्ख समाज भी इसी से सहमत है। परंतु, कुछ सिक्ख इन रचनाओं को गुरु जी की रचना मानते हैं और इन्हें आज भी सहेजे हुए हैं। इन पुस्तकों में प्रमुख हैं : **1. गोबिंद गीता, 2. कृष्ण चरित और 3. राम कथा प्रमुख हैं।** इनमें से कुछ पुस्तकें ऑनलाइन उपलब्ध हैं और राम कथा पर तो कुछ विद्वानों ने समीक्षात्मक कार्य भी किया है। गोबिंद गीता के कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं; चौपाई के कुछ अंश देखिए जिनमें भगवद्गीता की भावभूमि परिलक्षित हैः

"अरजन प्रति आखे गोपाल।
सुन अरजन पांडव के लाल।।
और भांत मैं तुझ समझावो।
तेरे मन की तख्त बुझावो।।
इह जो सनमुख राजा ठाडे।
तेरी सकत न लियावे बांधे।।
इनका नास न तेरे हाथ।
करम बचित्र नित जानो साथ।।
जग में आवागमन बनाई।
जो आवे सो थिर न रहाई।।
x x x x
जो अचरज की बात, ताकि चिंता मत करो।
गोबिंद सिंह सब सत् एक अद्वैति मन धरो।।"

निम्मांकित में गीता के जहां द्वितीय अध्याय का स्थितप्रज्ञ दर्शन (या निशा सर्वभूतानां आदि) लक्षित है :

सुन करि अरजन बोलिया, हे केसव भगवान्।
जिसकी निश्चल बुध है, तिस को करो परनाम।।
वह समाधि कैसे करे, कैसे रहत रहे।
बोले चाले कवन विध, कैसी सिद्ध को लहे।।

इसी प्रकार दशम ग्रन्थ में भी श्रीकृष्ण चरित का वर्णन मिलता है। चौपाइयां पठनीय हैं :

अब वरणो किशना अवतारू।
जैसे भांत वरुधरयो मुरारू।।
परम पाप ते भूम डरानी।
डगमगात बिध तीर सिधानी।।1।।
ब्रह्मा गयो छीरनिध जहाँ।
कालपुरुख इसथित ते तहाँ।।
कहयो बिशन कह निकट बुलाई।
क्रिशन अवतार धरो तुम जाई।।2।।
कालपुरख के बचन ते संतन हेत सहाइ।
मथरा मंडल के विखे जनम धरयो हरिराई।।3।। (पन्ना 586)

इस प्रकार श्रीकृष्ण गुरुवाणी में स्मरणीय रहे हैं और उनकी लीला के प्रसंग और उद्धारक दोनों रूपों में मिलते हैं। गोबिंद गीता हमें भगवद्गीता की छाया लिए प्राप्त होती है। पंजाब वह भूमि है जहां के संघोल से प्राप्त मूर्तियां और प्रतिमाओं के अवशेष मथुरा कला से पर्याप्त साम्यता लिए हैं जो यह भी बताती हैं कि कभी कलाकारों का ब्रज भूमि से निकट संबंध रहा होगा। यहां मंदिरों में उत्सव के रूप में जन्माष्टमी आदि भी मनाए जाते हैं।

गली न. 10, मकान नं. 243,
कमालपुर, होशियारपुर, पंजाब
मो. 9878612556

●

भोजपुरी लोकनाट्य 'बाँसुरी' : एक अध्ययन

कुमार गौरव मिश्रा

शोध सारांश : सुरेश कांटक भोजपुरी साहित्यकारों की पंक्ति में अहम स्थान रखते हैं। इनके साहित्यिक योगदान के लिए इन्हें बिहार सरकार द्वारा 2015 में 'फणिश्वर नाथ रेणु पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया है। 'बांसुरी' लोकनाटक इनके नाट्य संग्रह 'बेमार बाड़े सगुनी' में संग्रहित है, जिसका प्रकाशन वर्ष 2019 है। इनके नाटकों में अनुसंधान की असीम संभावना है। 'बांसुरी' लोकनाटक के विभिन्न तत्वों, यथा--विषयवस्तु, कथानक, उद्देश्य, भाषा-शैली, चरित्र योजना संवाद योजना, देश-काल-वातावरण, अभिनेयता व संगीत योजना और भोजपुरी लोकनाटकों की परंपरा से इसके अंतर्संबंध के माध्यम से इस शोध-पत्र में इस पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक का आधार तो राधा-कृष्ण की प्रेमकथा है, पर यह वर्तमान की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं को सहज रूप में व्यंजित करता है।

लोकनाट्य को लोकधर्मी नाटक, जननाट्य, क्षेत्रीय या प्रादेशिक, ग्रामीण अथवा आंचलिक नाट्य नामों आदि नामों से भी जाना जाता है। मध्य काल में ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने 'घृतं समागम' एवं उमापति ने कालोतिरीवर 'पारिजात हरण' नाटक की रचना की। भक्तिकाल में राम और कृष्ण की लीलाओं के द्वारा लोकभाषा में लोकनाट्य का आरंभ हुआ। भोजपुरी लोकनाटक में महेन्दर मिश्र व भिखारी ठाकुर का स्थान अग्रगण्य है। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आदि तमाम विषयों पर अनेक नाटक लिखे व मंचन के द्वारा लोगों को नाटक से जोड़ने में अभूतपूर्व सफलता हासिल की। इसके पश्चात पंडित राहुल सांकृत्यायन ने आठ नाटक लिख कर, भोजपुरी लोकनाटक को और समृद्ध किया। स्वर्गीय रामेश्वर सिंह कश्यप ने 'लोहा सिंह' रेडियो नाटक का प्रसारण लगातार करवाया था। इस नाटक का असर बाद के भोजपुरी नाटककार, जैसे स्व. विमल कुमार सिंह और डॉ. मुक्तेश्वर तिवारी बेसुध आदि के नाटकों पर देखा जा सकता है। वर्तमान समय में भोजपुरी भाषा में लोकनाटक लिखने वालों में सुरेश कांटक, हृषिकेश सुलभ, रवींद्र भारती, अविनाशचंद्र मिश्र, कुणाल आदि नाम आते हैं।

विषयवस्तु : यदि विषय-वस्तु की दृष्टि से लोकनाटकों का विभाजन करें, तो चार भागों में विभाजित किया जाता है-- (क) सामाजिक (ख) राजनीतिक (ग) हास्य-व्यंग्य प्रधान (घ) उपदेश परक एवं धार्मिक। 'बाँसुरी' उपदेश परक एवं धार्मिक नाटकों के अधिक नजदीक है। 'बाँसुरी' का कथानक पौराणिक है एवं इसके चरित्र भी पौराणिक काल के हैं, जो स्वतः धार्मिकता से जुड़ जाता है। इसकी कथा एकसूत्रीय नहीं है, अर्थात इसमें एक से अधिक कथा

हैं। इसमें दो कथाएँ हैं। दूसरे झलक से लेकर चौथे झलक तक, मथुरा जाने से पहले की कथा है। इसके माध्यम से कृष्ण और राधा व अन्य गोपियों के प्रेम को तो उद्घाटित किया ही गया है, पर वैयक्तिक प्रेम के ऊपर लोककल्याण की महत्ता प्रकट की गई है। वहीं, पाँचवे से लेकर सातवें झलक तक की कथा में, राधा के उदात्त प्रेम को प्रस्तुत किया गया है। भारतीय लोकमानस में कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता है नाटक के छठे झलक में नारद जी राधा से कहते भी हैं कि कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं। परंतु नाटककार कृष्ण के ईश्वरत्व-प्रतिपादन में रुचि नहीं लेता, वह उसके मनुष्यत्व को महत्व देता है, द्रष्टव्य निमांकित संवाद -

कृष्ण : "दाउ भइया, इहो जरूरी बा जिनगी खातिर। कठोरता के साथे कोमलता भी रहे के चाहीं। तु ठहरल अखाड़ा के आदमी। तहरा ना बुझाई ई सब।"

बलराम : "बस, बस रहे द। तू ही बूझ ई सभ बजावत रह बाँसुरी।"

कृष्ण : "हँ भइया, तू गदा के बिना ना रह सकेल। हमरा खातिर बाँसुरी जरूरी बा। हमार प्रभाव देर तक आ दूर तक रही। तहार ठाँवही खतम।"

बलराम : "तहरा का बुझाई, सइ चोट सोनार के आ एके चोट लोहार के।"

कृष्ण : (हँसत बाड़न ठहाका लगा के) भइया, "तहार बात साँच बा। बाकिर सोनार गहना गढ़ेला। जवन दूरे से चमकेला। थोरकी देर आउर दम धरा राधा के समझा देबे द।"[1]

पाँचवें झलक में नारद के कथनों में भी देख सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नारद, कृष्ण की लीला में उनके साथ मिले हुए हैं और रूक्मिणी व सत्यभामा को यह बताना व साबित करना चाहते हैं कि क्यों राधा कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय है। जब नारद महल छोड़ कर निकलते हैं तो कृष्ण छुप कर मुस्कुरा रहे होते हैं। 'बाँसुरी' की कथा भले ही पौराणिक हो, पर यह राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को भी व्यंजित करता है। 'कंस' मथुरा का निरंकुश राजा है। उसका वध कर, उसे राज सिंहासन से पदच्युत कर, कृष्ण समाज को एक संदेश देते हैं कि जब राजा जनकल्याण की जगह, व्यक्तिगत भोग-विलास में लिप्त हो कर, जनता का खून चूसने लगे तो जनता या उसके प्रतिनिधि को चाहिए कि वह उस राजा के खिलाफ हल्ला बोल दे।

उद्देश्य : भारतीय परंपरा में नाटक का उद्देश्य रस माना गया है, जबकि पश्चिम में 'विरेचन'। चूंकि लोकनाटक का प्राथमिक उद्देश्य मनोरंजन व रस की प्राप्ति है, कांटक जी ने इसका भरपूर ध्यान रखा है। किंतु इसमें विरेचन का भी पर्याप्त अंग है। कृष्ण के मथुरा जाने के समय स्वंय कृष्ण गोपियों व राधा के साथ सामूहिक रूप से रोते हैं, जिससे उन सबकी मनोदशा का अनुभव करना कठिन नहीं है। मथुरा जाने के बाद भी कृष्ण की याद में राधा का करुण व त्रास भरा जीवन, इस लोकनाटक के माध्यम से पाठकों व दर्शकों को विरेचित अवस्था में पहुंचा देता है। 'बाँसुरी' के माध्यम से नाटककार प्रेम के उदात्त स्वरूप को तो पेश करता ही है, साथ ही वैयक्तिकता के स्थान पर लोककल्याण को स्थापित करना चाहता है। यह कृष्ण के एक संवाद से और अधिक स्पष्ट होता है -

कृष्ण : "ना ना, सभ के दुख के बारे में सोचे के चाहीं। पहिले लोक के कल्याण, तब हमार कल्याण, अपना बारे में सोचे वाला आदमी सही आदमी ना होला।"[2]

भाषा शैली : जहाँ तक लोकनाटक की विशेषताओं का प्रश्न है, तो उनमें प्रयुक्त भाषा का स्थान प्रमुख है। इसका माध्यम वही होता है जो उस क्षेत्र विशेष में जनसामान्य द्वारा प्रयोग किया जाता है। लोकजीवन में होने वाले सभी उत्सव, मांगलिक कार्य, शोक, उल्लास, हर्ष इत्यादि में प्रयोग होने वाली भाषा या बोली ही लोकनाटक की भाषा होती है। 'बाँसुरी' में प्रयुक्त भाषा/बोली भोजपुरी है, जो हिन्दी पट्टी के एक बड़े भू-भाग में बोली जाती है परंतु इसमें प्रयुक्त सूरदास के पदों की भाषा ब्रज है। लोकभाषा की अपनी जो एक सरसता है, वह इस लोकनाटक में दिखाई पड़ती है। भाषा सरल है। राधा-कृष्ण के प्रेम को पाठक सहज रूप से महसूस कर सकता है--

"राधा : "आ गइल कृष्ण, आज जा रहल बाड़?"

कृष्ण : "हँ, राधा, जात बानी। बाकी जाये से पहिले एगो बात कहे आइल बानी।"

राधा : "कवन बात कृष्ण?"

कृष्ण : "हम एगो बात कहले रहीं, तहरा याद होई।"

राधा : "ना कृष्ण, फेर से कहऽ ना।"[3]

नाटककार कांटक इस बात को भली-भांति समझते हैं कि किसी भी समाज की नब्ज़ या धड़कन मुहावरों व लोकोक्तियों के माध्यम से ही व्यक्त होती है क्योंकि इनका निर्माण लोकजीवन के साक्षात् अनुभवों से ही होता है। इस कारण, इस छोटे से लोकनाटक में जगह-जगह इनका प्रयोग होता रहता है-

बालराम : "... सई चोट सोनार के आ एके चोट लोहार के।"[4]

कृष्ण : "... जब जइसन तब तहसइ। ना त मरद कइसन?"[5]

इस लोकनाटक की भाषा संरचना में एक महत्वपूर्ण तत्व सूत्रात्मकता का प्रयोग भी है। नाटककार ने इस रचना में इसे कृष्ण के माध्यम से संप्रेषित किया है --

कृष्ण : "... शदेशाढ्यम चराचरेत"[6]

कृष्ण : "दूर के प्रेम आउर सघन हो जाला।"[7]

कृष्ण : "... प्रेम निराशा में आशा के जोत जगावेला।....."[8]

चरित्र-योजना : इसमें कुल 9 पात्र हैं-- राधा, पति (राधा का), कृष्ण, अक्रूर, बलराम, रूक्मिणी, सत्यभामा, नारद जी, लइका। लोकनाटक का कथानक राधा-कृष्ण के प्रेम पर आधारित है, इसलिए इसमें राधा व कृष्ण ही मुख्य चरित्र हैं व अन्य गौण। भारतीय लोकमानस के अनुसार, कृष्ण, विष्णु के अवतार माने जाते हैं। राधा-कृष्ण का प्रेम-कृष्ण का मथुरा जाने से पहले गोपियों व विशेष रूप से राधा से मिलना व उसे अपनी बाँसुरी सौंप देना, मथुरा जाकर अराजक राजा कंस की हत्या करना इत्यादि कथा लोकजन में रची-बसी है। इसी लोकमान्यतानुसार, कांटक जी ने कृष्ण के उदात्त चरित्र को प्रस्तुत किया है जो राधा से असीम प्रेम करने के बावजूद लोककल्याण हेतु वृंदावन छोड़ कर मथुरा चले जाते हैं। राधा का चरित्र भी कृष्ण से कमतर नहीं है, जो कृष्ण के बड़े लक्ष्य में अपने प्रेम को बाधा नहीं बनने देती, अपितु उनके लक्ष्य में सफलता हेतु मंगलकामना करती है। कृष्ण के सिर में तीव्र वेदना के बारे में जान कर व शर्त सुन कर, वह झट शर्त मान जाती है और अपने पैर की धूल, यह जानते हुए भी कि उसे नरक में जाना पड़ सकता है, नारद को दे देती है जिससे कृष्ण के सर की वेदना समाप्त हो जाए। ऐसा करके वह अपने हृदय में कृष्ण के प्रति उमड़ते प्रेम की पराकाष्ठा का परिचय देती है।

संवाद-योजना : लोकनाटकों में संवाद ही एक ऐसी कड़ी है जो दर्शकों को बांधे रखती है। लंबे स्वगत कथनों व एकालापों के कारण दर्शक की एकाग्रता भंग होती है। 'बाँसुरी' में संवाद छोटे-छोटे, चुस्त एवं गतिशील हैं। इससे दर्शक नाटक इसकी कथा से घुल-मिल जाते हैं। राधा-कृष्ण का प्रेममय संवाद, कृष्ण-बलराम की नोक-झोंक व राधा-नारद का संवाद विशेष रूप से उत्कृष्ट हैं --

"कृष्ण : "दाउ भइया ....!"

बलराम : "हँ हैं, आ गइलऽ, चल, जल्दी चलऽ।"

कृष्ण : "थोड़ी देर आउर रूक जा दाउ भइया। अब ही बात पूरा नइखे भइल।"

बलराम : "तू बहुत लंद फंदी आदमी हव। हर जगह लसर फसर लगवाले रहेल।"

कृष्ण : "भइया, तहरा ना बुझाई।"

बलराम : "का ना बुझाई? तू ही बड़का बुझक्कड़ भाइल बाड़। अक्रूर जी धबड़ाइल बाड़न। उहँवा इंतजार करत होई लोग।"

कृष्ण : "हमहूं सही समय के इंतजार करत बानी भइया।"

बलराम : "तू लसफसाह आदमी हवऽ मेहरारू लइकिन में बहुत मन लागेला तहार।"[9]

देश-काल : 'बाँसुरी' में देश व काल के पर्याप्त संकेत हैं। इसमें द्वारका, वृदावन व मथुरा का जिक्र बारबार हुआ है। सभी चरित्र पौराणिक व ऐतिहासिक हैं। सातवें झलक में महाभारत होने की संभावना की

भी चर्चा है। इससे पाठकों व दर्शकों को युगीन संकेत प्राप्त होते हैं। मथुरा जाने से पहले कृष्ण का सभी गोपियों से मिलना, सभी का सामूहिक रूप से रोना, माँ यशोदा व नंद बाबा से जाने का आदेश लेना इत्यादि मनोनुकूल वातावरण मौजूद है, जिससे पाठक व दर्शक कुछ समय के लिए उस युग में पहुंच जाते हैं।

अभिनेयता : लोकनाटकों के पात्र प्रायः ग्राम्य जीवन से संबंधित होते हैं, इसलिए लोकनाटकों में अभिनय के लिए पात्रों का अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। लोकनाटकों के अभिनय के लिए जो पात्र चुने जाते हैं, वे लोकनाटक की भाषा, अभिव्यक्ति, वातावरण आदि से पूर्ण परिचित होते हैं, इसलिए उन्हें नाटक के पात्रों की नकल उतारने में कोई कठिनाई नहीं होती है। 'बाँसुरी' भोजपुरी भाषा में है और इसका मंचन करने के लिए इसी क्षेत्र के अभिनेता भी मिल जाते हैं, जो अभिनय कला में निपुण होते हैं। संवाद और गीत में जो प्रेषणीयता है उसे दर्शकों तक अभिनेता पहुंचाते हैं।

"राधा : (लइका का ओर देख के) "का ह बबुआ?"

लइका : "राधा काकी, द्वारिका से कृष्ण जो आइल बाड़न। तहरा से मिले खातिर आवत बाड़न।"

राधा : "धत् पगला! हमरा के चिढ़ावत बाड़े। ऊ द्वारिका के राजा बन गइल बाड़न। ऊ का करे अइहें।"

लइका : "हं, काकी, आइल रहन नंद बाबा आ जसोदा मइया से भेंट करे। तहरो से भेंट करे आवत बाड़न।"

राधा : "तू झूठ बोलत बाड़। झूठा हव। कृष्णा इहँवा का करे अइहें। हमरा के भुला गइल होइहें।"

लइका : "साँचो काकी, महाभारत के लड़ाई लागे वाला बा। समुझावे आइल"

राधा : (झटपट हाथ धोवत बाड़ी। अगुताइले जसे बाड़ी तसही दुआर का ओर धउरत बाड़ी। लइका से कहत बाड़ी) "चलऽ त, देखीं कहँवा बाड़न। कइसन भइल बाड़न!"[10]

कांटक लोकनाटककार के रूप में स्थापित तो हैं ही, साथ ही वह एक समर्पित रंगकर्मी भी हैं। अभिनय, निर्देशन कार्य, साज-सज्जा व मंथ व्यवस्था के अलावे गीत-संगीत से भी उनका गहरा लगाव रहा है। इनका यह अनुभव 'बाँसुरी' में देखा जा सकता है। वे जगह-जगह अभिनेय संकेत देते हुए नजर आते हैं।

संगीत योजना : सभी लोकनाटकों की तरह, भोजपुरी लोकनाटक में भी संगीत योजना का खास ध्यान रखा जाता है। कांटक जी के लगभग सभी लोकनाटकों में गीतों की प्रधानता है। 'बाँसुरी' में कथा की शुरूआत स्वर संकेत देते हुए, बाँसुरी की सुरीली मधुर आवाज से होती है एवं अंत भी बांसुरी के सुर में ही किया गया है। इसमें सूरदास के कुल तीन पदों को लिया गया है। झलक पाँच में जब कृष्ण मथुरा के महल में बैठ कर ब्रज को याद कर रहे हैं-- **"ऊधो, मोहि ब्रज विसरत नाहीं..."**[11], दूसरा पद छठे झलक में है, जब नारद जी पैर की धूल की खोज में निकल पड़ते हैं-- **"ऊधो मन नाहीं दस बीस..."**[12] और अंतिम व तीसरा सातवें झलक में है, जब कृष्ण मथुरा से वापस वृंदावन आकर राधा को देखते हैं- **"अँजन थिर न रहत अँखियन में...।"**[13]

भोजपुरी लोकनाटक 'बाँसुरी' एवं नाट्यसंग्रह 'बेमार बाड़ें सगुनी' में संकलित अन्य लघु लोकनाटक न केवल अभिनय की दृष्टि से सफल, अपितु शोध की दृष्टि से भी उपयुक्त हैं। इस लोकनाटक पर सूक्ष्मता से दृष्टिपात करने पर, इसके तत्वों की और बारीकी से जांच की जा सकती है, जो लोकसाहित्य के लिए हितकर सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ

1. कांटक, सुरेश (2019), बेमार बाड़ें सगुनी, नई दिल्लीः नवजागरण प्रकाशन, पृ. 188, 189। **2.** वही, पृष्ठ सं. 194। **3.** वही, पृष्ठ सं. 185। **4.** वही, पृष्ठ सं. 189। **5.** वही, पृष्ठ सं. 190। **6.** वही। **7.** वही, पृष्ठ सं. 192। **8.** वही, पृष्ठ सं. 190। **9.** वही, पृष्ठ सं. 188। **10.** वही. पृष्ठ सं. 199। **11.** वही, पृष्ठ सं. 192। **12.** वही, पृष्ठ सं. 196। **13.** वही, पृष्ठ सं. 199।

शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली-110025
मो. 8587005252
ई-मेल : mishrakumargaurav92@gmail.com

हरिहर रूप का रहस्य

डॉ. आनन्द शर्मा

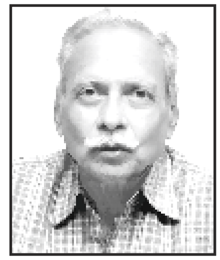

धर्मप्राण भारत के मन्दिरों में स्थापित 'हरिहर' की कल्पना को सामान्यतः मध्यकाल में तीव्र हो चले शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के विवादों से जोड़ा जाता रहा है। यह माना गया कि इन विवादों को शान्त करने की दृष्टि से ही 'हरिहर' (विष्णु और शिव) की कल्पना करके, ऐसे विग्रहों को मन्दिरों में प्रतिष्ठापित किया गया था। सामान्य दृष्टि से यह धारणा प्रासंगिक और उचित ही प्रतीत होती है। मध्यकाल में शिव और विष्णु के उपासकों में अपने-अपने देवों को श्रेष्ठतम सिद्ध करने की होड़ कटुता और शत्रुता की सीमा तक जा पहुंची थी। शैव तो शिव के अतिरिक्त अन्य किसी देव की सत्ता ही नहीं स्वीकारते थे। वे शिव को ही सृष्टि का बीज-मूल तत्व मान कर, विष्णु और ब्रह्मा की उपेक्षा करते थे। इसके विपरीत विष्णु उपासक दबे स्वर में शिव की महता तो स्वीकार करते, मांगलिक कार्यों से लेकर मरणमुक्ति तक उनका वर्चस्व स्वीकार कर उपासना करते। लेकिन विष्णु को श्रेष्ठ बनाये रखने के लिए शिव को 'लिंग' मान कर उस पर चढ़ा प्रसाद तक ग्रहण नहीं करते थे। उन्हें अमंगलवेषी, श्मशाननिवासी मानकर थोड़ी दूरी बनाये रखना विष्णु उपासकों की प्रकृति में शामिल हो गया था।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में उठने वाले विवाद तेज होते गए। उपासकों के बाद राजा लोग भी इसी रूप में देखे जाने लगे। राजा भी अपने आराध्य देव को प्रतिष्ठित करने के लिए राज्य साधनों का उपयोग करने लगे। वैष्णव राजा के शासन में शिव और शैव मतानुयायी नरेश के राज्य में विष्णु को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती थी। ऐसे समय हरिहर की कल्पना को इन विवादों की समाप्ति के साथ जोड़ा जाना सहज प्रतीत होता है।

लेकिन ऐसा नहीं था। हरिहर विग्रह का आधार पुराण होने के कारण इसका सम्बन्ध सहज ही पौराणिक काल से भी हो जाता है। इसके अतिरिक शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव से पूर्व की मिली हरिहर प्रतिमाएं भी इसे आपसी विवाद का प्रतिफल अस्वीकार करती हैं। प्रतिहार काल में दोनों पंथों की विरोधी भावना मिटाने के लिए 'हरिहर' विग्रहों की प्रतिष्ठा पर अधिक बल अवश्य दिया गया था। वरना तो हरिहर, पुराणों में वर्णित 'एकेश्वरवाद' में निहित एक ही शक्ति और त्रिगुण (सृजन, पालन, संहार) का प्रतिनिधित्व करते हैं। शैव-वैष्णव परम्परा तो बहुत बाद की है। बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा आदि के सन्तों ने भी दोनों को मिलाने के प्रयास ही किये थे। कदाचित राजस्थान में भी प्रतिहार काल में दोनों पंथों की विरोधी भावना मिटाने के लिए इस पर ज्यादा जोर दिया गया हो। लेकिन मूल रूप में इसकी सृष्टि सृजन के मूल स्रोत को प्रदर्शित करने के प्रतीक रूप में ही प्रयोग किया गया था।

शिव और विष्णु पुराण इस 'एकेश्वरवाद' की कल्पना को समझाने में सहायक हुए हैं। पुराणों में अनेक कथाओं के द्वारा दोनों देवों को सृष्टि का मूल आधार और एक दूसरे का पूरक बताया गया है। विष्णु और ब्रह्मा के विवाद में शिव, लिंग रूप में प्रकट होकर उन्हें इसका आदि-अन्त ढूंढने की चुनौती देकर, दोनों के अहं का शमन करते हैं। स्वयं को सृष्टि का निर्माता मान कर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने में जुटे विष्णु और ब्रह्मा को लिंगरूपी शिव का आदि-अन्त न पाकर अपनी लघुता का आभास हो जाता है।

इसी तरह विष्णु के 'मोहिनी' रूप देखने की इच्छा करने पर एक दिन शिव को अत्यन्त रूपवती स्त्री के एकान्त दर्शन होते हैं। कामजयी शिव कामोन्मत्त हो उसे पकड़ने के लिए भागते हैं। विष्णु रूपी स्त्री के बचने के प्रयासों को विफल करते हुए ऊर्ध्वलिंगी शिव अन्ततः उसे पकड़ कर आलिंगनबद्ध कर लेते हैं। किन्तु मैथुन के लिए उद्यत शिव का वीर्य स्खलन हो जाता है। फलस्वरूप शिव और विष्णु के मानसिक संयोग से 'भगवान अयप्पन' उत्पन हुए। केरल में इन्हें हरिहर का पुत्र मान कर पूजा जाता है।

'हरिहर' कल्पना की प्रथम मूर्ति विदिशा में मिली थी। प्रथम शती में निर्मित यह मूर्ति दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। स्पष्ट है इस कल्पना की मूर्तियां कुषाण काल में बनने लगी थीं। ऐसी मूर्तियों के मस्तक तो मथुरा, लखनऊ, प्रयाग आदि में काफी मिले हैं। शैव-वैष्णव विवाद तो इसके सैकड़ों वर्षों के बाद प्रतिहार काल में आरम्भ हुआ था।

भारतीय शिल्प कला में 'अर्धनारीश्वर' और 'हरिहर' की कल्पना साथ-साथ चलती है। अर्धनारीश्वर में शिव के वाम भाग में पार्वती और हरिहर में विष्णु होते हैं। दोनों का ही सृष्टि के सृजन, पालन और विलयन से सम्बन्ध है। यही इन दोनों स्वरूपों की दार्शनिक पृष्ठभूमि है।

शिवपुराण में शिव, विष्णु से कहते हैं 'अहं बीजं, त्वं योनि'। शिव बीज हैं, विष्णु क्षेत्र हैं। शिव पुरुष हैं, विष्णु प्रकृति हैं। सृष्टि में सृजन और विनाश का चक्र अबाध चलता रहता है। विष्णु तो स्त्री के समान जन्म देकर पालन करने का काम करते हैं। सृष्टि के निर्माण और विनाश से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

इसके विपरीत शिव दोहरे दायित्वों का निर्वहन करते हैं। एक ओर वे 'बीज' द्वारा सृष्टि करते हैं, दूसरी ओर विनाश भी सम्पन्न करते हैं। विनाश के बिना सृजन और सृजन के अभाव में विनाश संभव नहीं है। इसी प्रकार एक ओर वे 'शिव' हैं, दूसरी ओर 'महाकाल' भी हैं। एक ओर मंगलमय और दूसरी ओर अमंगलवेषी हैं। एक ओर भिखमंगा, दूसरी ओर अन्नपूर्णा के पति हैं। एक ओर महाकाल, दूसरी ओर मृत्युंजय हैं।

डॉ. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी के अनुसार सृष्टि में सृजन का आधार 'लिंग' है। 'लयनात लिंगः'-- जिसमें सब लय हो जाये, वह लिंग है। 'ऊर्ध्वलिंगी शिव' हैं। ब्रह्मा और विष्णु ऊर्ध्वलिंगी नहीं मिलेंगे। लिंग के ऊर्ध्व होने की सामर्थ्य के अभाव में 'पुरुष' नहीं हो सकता। पंचमुखी शिव के पांच नामों में एक 'तत्पुरुष' उनके ऊर्ध्वलिंगी होने के कारण ही दिया गया है। वह पुरुष जो 'ऊर्ध्वरत्स' है, अर्थात् वीर्यवान है। वीर्य के बिना लिंग ऊर्ध्व नहीं हो सकता। वीर्य ही बीज है। रज, क्षेत्र है। वीर्य-रज संयोग के बिना गर्भधारण नहीं हो सकता। इनके संयोग से ही सृष्टि होती है। इसलिए शिव का एक नाम 'बीजी' भी है। वे कहते हैं 'अहं बीजी'। वीर्य और रज का दर्शन नहीं होता। दर्शन तो पुरुष और प्रकृति का ही होता है। वीर्य और रज तो अन्दर के न दिखाई देने वाले तत्व हैं।

सृष्टि के मूल त्रिदेवों की कल्पना लिंग में साकार होती है। शिवपुराण के अनुसार लिंग के तीन भाग हैं। नीचे ब्रह्म भाग चौकोर, बीच का विष्णु भाग अठपहलू और ऊपर का शिव भाग गोल होता है। ब्रह्म भाग जमीन में लुप्त रहता है। विष्णु और शिव भाग ही जमीन से ऊपर दिखाई देते हैं। सबसे नीचे 'ऊर्घा' (योनि) में लिंग प्रतिष्ठित होता है। वह क्षेत्र का प्राकट्य और शिव का स्थिर होना है।

प्रतिहार काल में हरिहर मूर्तियों में कई परिवर्तन आए थे। सृष्टि सृजन की मूल कल्पना के विपरीत विष्णु को पुरुष रूप में प्रदर्शित करने के लिए उनके आयुध चक्र और गदा भी इसमें जोड़ दिए गए। इसी के साथ शिव के

त्रिशूल और माला भी मूर्ति में उत्कीर्ण होने लगे।

'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में कहा गया है कि हरिहर प्रतिमाओं के दाहिने भाग में सदाशिव तथा बायें भाग में हरि का अंकन होना चाहिए। शिव के हाथों में त्रिशूल और डमरू, हरि के हाथों में चक्र और कमल प्रदर्शित करना चाहिए। प्रतिमा की बायीं ओर शिव का वाहन वृषभ और दाहिनी ओर हरि का वाहन गरुड़ अंकित होना चाहिए।

खुदाई में मिली ग्वालियर के विख्यात 'हरिहरेश्वर' मन्दिर की अद्‌भुत प्रतिमा किसी भी तरह चौदहवीं शती के बाद की नहीं है। इस विशाल मूर्ति का निर्माण आधे काले और आधे सफेद पत्थर से किया गया है। पत्थरों में ऐसे छोटे-छोटे टुकड़े तो आम तौर पर मिल जाते हैं। लेकिन इतना विशाल श्वेत-श्याम प्रस्तर खण्ड तो दुर्लभ की श्रेणी में आता है। इस शिलाखण्ड के काले भाग में विष्णु बनाए गए हैं, जिनके पास शंख और चक्र उत्कीर्ण हैं। सफेद भाग में बने शिव के हाथों में त्रिशूल और कमंडल है। इस मूर्ति में हरिहर कल्पना का विपरीत क्रम है। अर्थात् शिव बायें और विष्णु दाहिनी ओर हैं। विपरीत क्रम का भारत में अकेला उदाहरण है। भारत से बाहर जावा में प्राप्त हरिहर की एक प्रतिमा में भी यही क्रम देखने को मिलता है।

भारत में हरिहर की अनेकों मूर्तियां मिलती हैं। कोटा में प्राप्त हरिहर मूर्ति में शिव चरणों में नन्दी और विष्णु चरणों में गरुड़ बने हैं। ग्वालियर संग्रहालय में 'घुराई' (जिला मंदसोर) से प्राप्त नौवीं शती (संवत् 150) शिव और विष्णु मा हरिहर अंकन शिल्पकला के शैव-वैष्णव सिद्धान्तों के समन्वय का प्रतीक है। चतुर्भुजी हरिहर समभंग मुद्रा में खड़े हैं। हाथों में दाहिनी ओर के क्रम में सर्प, त्रिशूल, चक्र और बायां नीचे के अग्र हाथ में सम्भवतः कमल रहा होगा। इस प्रतिमा के आयुध रूपमण्डन में वर्णित प्रतिमा लक्षण के समान है। हरिहर ने अनेक आभूषणों के साथ सिर पर जटा मुकुट एवं किरीट मुकुट का संयुक्त मुकुट धारण कर रखा है। गले में एकवली मणिमाला युक्त हार और कंधे पर अलंकृत यज्ञोपवीत, हाथों में केयूर, कटि में कमर पट्टिका, दाहिने पैर में सर्प, बायें में पैजनी है। पादपीठ के दोनों ओर शंख पुरुष, चक्र पुरुष तथा शिवगणों की प्रतिमाओं का भी अंकन है। प्रभामण्डल के ऊपर वितान में ब्रह्मा और विष्णु का अंकन है। हरिहर की मुख मुद्रा सौम्य है।

हरिहर की दूसरी प्रतिमा उज्जैन से प्राप्त नौवीं शती (संवत् 663) है। इस प्रतिमा का केवल सिर ही शेष है, जिस पर किरीट मुकुट और जटा मुकुट का अंकन है। कानों में चक्र कुण्डल और गले में हार है। शिल्प उच्च स्तरीय है।

उदयपुर के पास जगत की पहाड़ी पर गुप्तोत्तरकाल के हरिहर हैं। इसमें आयुध रूप में हल दिखाया गया है। भरतपुर संग्रहालय में सुरक्षित हरिहर मूर्ति (272/68) में 'कक्षा पुरुष' के रूप में हर की ओर त्रिशूल शक्तिधर स्कंद तथा विष्णु की ओर 'चक्र पुरुष' है। मूर्ति के पैरों के दोनों ओर बनी छोटी मूर्तियों को 'कक्षा पुरुष' और 'कक्षा सखी' कहते हैं। पौढ़ी गढ़वाल जिले में पैठानी के राहु मन्दिर में भी आठवीं शती की प्रतिमा है। इसमें हरिहर और 'वैकुण्ठ' का सफल संयोजन किया है। इसके तीन हाथों में अक्षमाला, त्रिशूल और शंख तो स्पष्ट दिखाई देते हैं, किन्तु चौथा स्पष्ट नहीं है। इसमें मध्य मुख हरिहर का है। जबकि दाहिनी ओर 'अघोर मुख' (शिव का विनाशक रूप) और बाएं हरिहर की ओर वराहमुख उत्कीर्ण है।

जोधपुर के पास ओसियां के हरिहर मन्दिर में शिव के मुख में मत्स्यावतारी विष्णु को दिखाया गया है। इसे 'भेरुंड' कहते हैं।

जयपुर के जयगढ़ स्थित हरिहर मन्दिर में तेरहवीं शती का विग्रह प्रतिष्ठित है। सन् 1225 में निर्मित इस प्रतिमा की दाहिनी ओर शिव तथा बायीं ओर विष्णु प्रतिष्ठित हैं। विष्णु के चक्र और शंख तथा शिव के त्रिशूल और माला के अतिरिक्त 'कक्षा पुरुष' के रूप में गरुड़ और नन्दी भी उत्कीर्ण किए गए हैं। कक्षा सखी के रूप में दोनों ओर तीन-तीन अप्सराएं हैं।

इस मूर्ति में एक नया प्रयोग दिखाई देता है। मूर्ति के प्रभामंडल के दोनों और शिव और ब्रह्मा के दो छोटे विग्रह भी उत्कीर्ण किये गए हैं। इसमें दाहिनी ओर त्रिशूल के पास शिव तथा बाएं चक्र के पास ब्रह्मा हैं।

श्वेत संगमरमर की इस मूर्ति का शिल्प सौन्दर्य देखते ही बनता है। सात सौ तिरानवे वर्षो के बाद भी इसकी चमक में कोई कमी नहीं आई है।

जयगढ़ में हरिहर दर्शन

भारत के मन्दिरों में 'अर्धनारीश्वर' (शिव और पार्वती) के विग्रह तो कई मन्दिरों में मिल जाते हैं। लेकिन हरिहर (विष्णु और शिव) के दर्शन जयपुर में ही होते हैं। इसके अतिरिक्त धनुषधारी पंचमुखी विष्णु प्रतिमा भी कम ही दिखाई देती है। ऐतिहासिक जयगढ़ में ये अनूठी ऐतिहासिक मूर्तियां विराजमान हैं।

जयगढ़ के जलेब चौक में चूने के परकोटे के बीच सफेद संगमरमर का यह भव्य और विशाल मन्दिर अलग ही नजर आता है। मन्दिर के गर्भगृह में इन दोनों भव्य मूर्तियों की स्थापना अम्बेर के राजा राजदेव ने सन् 1225 में की थी। लगभग आठ सौ वर्ष पुरानी इन मूर्तियों की भव्यता और शिल्प आज भी देखते ही सम्मोहित कर देता है।

गर्भगृह में दाहिनी मूर्ति भगवान विष्णु और शिव (हरिहर) की है। 'हरि' नाम विष्णु और 'हर' शिव का है। इस चतुर्भुज मूर्ति की बायीं ओर के हाथों में विष्णु के चक्र और शंख हैं। इस ओर सबसे नीचे पैरों के पास विष्णुवाहन गरुड़ भी बैठे हैं। प्रतिमा की दाहिनी ओर भगवान शिव का विग्रह है। इनके एक हाथ में त्रिशूल है, जिस पर सर्प लिपटा हुआ है तथा दूसरे हाथ में तपस्या की प्रतीक माला है। इस ओर चरणों में शिववाहन नन्दी आसीन हैं।

श्वेत संगमरमर की इस मूर्ति पर समय की मार कहीं भी दिखाई नहीं देती। सात सौ तिरानवे वर्ष की वय के बावजूद मूर्ति की चमक में कोई कमी नहीं आई है। प्रतिमा के एक-एक नोक-पलक बड़ी मेहनत से संवारे प्रतीत होते हैं। चक्र में जहां बारीक खुदाई है, वहां शंख भी जीवन्त बन पड़ा है। इसी प्रकार हाथ की माला के मनके और पैरों की अंगुलियों का एक-एक पोर-मनका साफ देखा-गिना जा सकता है। अप्सराओं पर भी कलाकारों ने काफी मेहनत की है। उनके अंग-प्रत्यंगों और हाव--भावों को काफी सफाई से उकेरा गया है।

बायीं ओर पंचमुखी विष्णु हैं। यह मूर्ति भी विचित्रताओं से ओत-प्रोत है। आम तौर पर विष्णु के चक्रधारी रूप के ही दर्शन होते हैं। लेकिन इस मूर्ति में विष्णु के बायें हाथ में शाङ्‌र्ग धनुष और दाहिने हाथ में बाण है। शेष दोनों हाथों में गदा और शंख हैं। धनुष के पीछे चक्र भी बना हुआ है। धनुषधारी होने के कारण इस मूर्ति में राम का भी भ्रम होता है। लेकिन मानव अवतार होने के कारण राम का चतुर्भुज रूप कहीं भी दिखाई नहीं देता। विष्णु मुख के बायीं ओर वराह और दाहिनी ओर नृसिंह के मुख हैं, जो भगवान विष्णु के अवतार माने जाते हैं। वराहमुख के ठीक ऊपर सटा हुआ कच्छप और नृसिंह के ऊपर मत्स्य बना हुआ है, जो क्रमशः कच्छप और मत्स्य अवतार की तरफ इंगित करते हैं। इस प्रकार एक ही मूर्ति में भगवान विष्णु के पांच अवतारों के दर्शन होते हैं। इस कल्पना की मूर्ति अन्यत्र देखने में नहीं आती।

मूर्ति के चरणों के पास एक ओर नारद और दूसरी ओर अज्ञात ऋषि हैं। पैरों के पास दोनों ओर नर्तन मुद्रा में तीन-तीन और कमर के पास दोनों ओर प्रणाम की मुद्रा में एक-एक अप्सरा है। सबसे ऊपर प्रभामंडल के बायीं ओर शिव और दाहिनी ओर ब्रह्मा की लघु मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

मूर्तियों की संगमरमर की बेदी पर सुन्दर कलात्मक गुलदस्ता बना हुआ है। जिसके दोनों ओर तीन सूंड वाले ऐरावत हाथी हैं। इनके दोनों ओर सुन्दर दीपदान खोदे गए है, इन्हें 'दीप मालिका' भी कहते हैं।

गर्भगृह का द्वार भी कलात्मक संगमरमर का है। इसमें खुदाई करके, सीसा भर के मनोहारी डिजायनें बनाई गई हैं। सबसे ऊपर दो गुम्बद और एक बुर्जी भी बनी हुई है, जिसका शिल्प पहली ही नजर में मन को अच्छा लगता है। मन्दिर के मुख द्वार पर चारों ओर संगमरमर का कलात्मक काम है। मुख्य द्वार पर पीतल जड़ा है, जो दूर से स्वर्ण का आभास देता है। यह कार्य महाराजा मानसिंह (द्वितीय) ने सन् 1940 में करवाया था।

645, किशोर कुंज, किशनपोल बाजार,
जयपुर-302001
फोन : 0141-2312222 / मो. 9462312222

●

कोटा के प्राचीन कंसुवा शिव मन्दिर का शिल्प

ललित शर्मा

दक्षिण पूर्वी राजस्थान के कोटा जिला मुख्यालय से लगभग 6 किमी दूर पूर्व में स्थित कंसुवा ग्राम में उत्तर गुप्त कालीन एक प्राचीन शिव मन्दिर स्थित है। इस मन्दिर का निर्माण उत्तर मौर्यवंशी राजा शिवगण द्वारा वि.सं. 795 (738 ई.) में करवाया गया था। इस आशय का एक महत्वपूर्ण 17 श्लोकों का शिलालेख मन्दिर में स्थापित है। इस स्थान पर कभी महर्षि कण्व का आश्रम होने के कारण इसे 'कण्वाश्रम तीर्थ' कहा जाता है तथा मन्दिर में स्थापित शिवलिंग को 'कण्वेश्वर महादेव' कहा जाता है। इस स्थान को कण्सुवा या आम भाषा में कंसुवा कहा जाता है, परन्तु वर्तमान में यह कंसुवा ग्राम के कर्ण्वेश्वर शिव मन्दिर, जो लोक के मुख-सुख परक उच्चारण के कारण कर्णेश्वर शिव मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है।

मंदिर में स्थापित कर्णेश्वर शिवलिंग

कंसुवा स्थित यह कर्णेश्वर शिव मन्दिर 8वीं सदी की कला का सुन्दर उदाहरण है। इसके सुदृढ़ता के साथ निर्माण का शास्त्रीय अनुपात इसे अपने युग के देश में शीर्षतम मन्दिरों की श्रेणी में वर्णित करता है। वर्तमान मन्दिर में यद्यपि मन्दिर का शिखर व गूढ मण्डप भग्न है परन्तु मन्दिर का ढ़ांचा ज्यों का त्यों खड़ा हुआ है। प्रारम्भिक नींव एवं खुर्रा से लेकर छज्जे तक गर्भगृह एवं अन्तराल तथा बाह्य भाग आंशिक क्षति के अतिरिक्त जैसा का जैसा ही खड़ा है। खुर्रा भाग अभी भी मन्दिर के बाहरी फर्श के नीचे दबा हुआ है, परन्तु उसके ऊपर कुम्भा तथा उसके ऊपर कलश का अंकन है। इनके ऊपर कपोतली है जिसके ऊपर साँची के द्वार की कला समान लघु आकृतियाँ बनी हैं। पुरातत्ववेत्ता इन्हें चन्द्रशाला, ग्रासमुख, हंस

पंक्ति एवं पर्णावलि कहते हैं। मन्दिर के पीछे की कपोतली में तीनों ओर की कलाकृतियों के 51 ब्लॉक्स हैं जो अलग-अलग आकार के हैं। इनमें से 27 चैत्याकृति के, 6 मानव मुखों के, 6 हंसों के, 6 अर्द्धकमल एवं कमल कलियों के, 4 अर्द्ध चन्द्रावली आकृतियों के एवं 2 गज मुखों के हैं। मानव मुख की आकृतियाँ सर्वाधिक विचित्र तथा अनूठी हैं। इनके नेत्र खुले हुए हैं तथा भौहें घुंघराली हैं। जिनके ऊपर के कपाल भाग पर आकर्षक पुष्प वल्लरियाँ हैं तथा उनके ऊपर केश राशि है। दोनों आँखों के मध्य नीचे की ओर मोटी सी नासिका है तथा उनके दोनों ओर के दो गाल अत्यधिक फूले हुए हैं। इनके ओठ बन्द है, जिनके ऊपर से घुमावदार मूँछें गालों के निचले हिस्से तक जाती है। यह सब अंकन अतिकलात्मक और आकर्षक है।

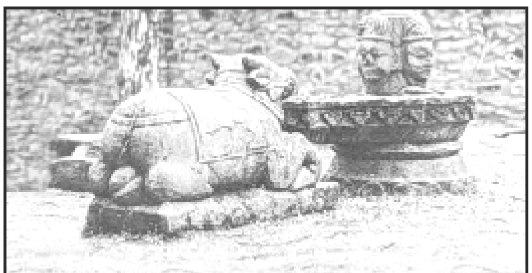

मंदिर परिसर में शिवलिंग और नन्दी

मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी दीवार की कपोतली में हंसों का सुन्दर अंकन है। ये अपनी ग्रीवा को दूसरी दिशा में मोड़े हुए हैं। इनकी पूँछें बहुत ही सुन्दर और घुमावदार अलंकरण से युक्त हैं। इन हंसों को कहीं खड़े और कहीं युगल रूपों में उत्कीर्ण किया गया है। कपोतली पर सबसे अधिक अंकन चैत्याकृतियों का है जो स्वतन्त्र आकार में हैं। यह सब अलग-अलग आकार में हैं परन्तु अधिकांश चैत्याकृतियों का अंकन एक समान है, इनके मध्य नीचे एक गोला है जिसका निचला भाग चपटा है। इसके मध्य में एक त्रिआयामी पुष्प जैसी आकृति का अंकन है। इस आकृति पर चैत्यद्वार के समान मेहराबदार पट्टिका है, जिसके नीचे के दोनों छोर एक घुमावदार अंकन के नीचे तक एक पट्टी से जुड़े हैं। ये चैत्य आकृतियाँ यद्यपि सादगी लिये है लेकिन फिर भी सुरुचिपूर्ण और आकर्षक हैं। इसी प्रकार कुछ ब्लॉक्स में कमल

प्राचीन शिवलिंग, कंसुवा मंदिर

कलियों एवं अर्द्ध कमल का अंकन है। कुछ में कमल पुष्प का अति सुन्दर चित्रण है। कपोतली के ऊपर बने ब्लॉक्स में एक कला खण्ड चन्द्राकृति का है। इसमें घुमावदार पुष्प-पत्तियों की ऐसी गोल आकृति उत्कीर्ण की गई है जो पूर्ण चन्द्र जैसे दृश्य का आभास कराती है। कपोतली के दो स्थानों पर ब्लॉक्स में हाथी का भी अंकन है, इसमें हाथी के मुख, सूँड़, आंखें और कान ही द्रष्टव्य है। हाथी के मुख के पीछे चारों ओर पुष्प-पत्तियों का सुन्दर अंकन है। हाथी का यह भाग उड़ता हुआ दिखाया गया है। इसमें एक हाथी जिसका मुख दाहिनी ओर है उसका मुख खुला दर्शाया गया है तथा सूंड़ घुमावदार होकर ऊपर उठी हुई है एवं कान बड़े हैं। ग्रीवा में एक माला का अंकन है और दाँत भग्न हैं। हाथी की घुमावदार सूंड़ और मुख के भाव बहुत सुन्दर हैं।

मन्दिर का अन्तराल और गर्भगृह आज भी मूल रूप में खड़े हुए हैं, परन्तु गूढ़ मण्डप का मूल ऐसा प्रतीत नहीं होता है। गूढ़ मण्डप के निर्माण में जिन पाषाणों का उपयोग किया गया है यह सब पूर्वकाल के प्रतीत होते हैं। परन्तु वे सब न तो एक काल के हैं और ना ही निर्माण की दृष्टि से एक समान कारीगरी के हैं। अतः वर्तमान कालीन इस मन्दिर में जो गूढ़ मण्डप है वह जीर्णोद्धार के समय पुनः निर्मित लगता है। इस गूढ़ मण्डप के प्रवेश द्वार पर उत्तरांग पट्टिका है उस पर

गरुड़ के ऊपर आरुढ़ विष्णु की मूर्ति का अंकन है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि यह पट्टिका इस मूल मन्दिर की नहीं है तथा मण्डप के पुनः निर्माण के समय अन्यत्र से लाकर यहाँ लगा दी गई है। गूढ़ मण्डप का आन्तरिक भाग 12 स्तम्भों पर आधारित है। इन स्तम्भों पर अलग-अलग कला शैली है परन्तु सभी स्तम्भों की ऊंचाई और मोटाई एक समान है। ये सभी 12 स्तम्भ चार-चार की तीन कतारों में हैं। सभी स्तम्भों पर अलंकरण है और इनके ऊपर कीर्तिमुखों का अंकन है। इनमें दूसरे और तीसरे स्तम्भ के मध्य नन्दी की पाषाण मूर्ति स्थापित है।

गूढ मण्डप के पश्चात् अन्तराल है जिसकी लम्बाई 9 फुट चौड़ाई 6 फुट 4 इंच है। अंतराल के दोनों द्वारों पर सादे स्तंभ हैं परन्तु उनके शीर्ष अलंकृत हैं। इनके कीर्तिमुख बिल्कुल कपोतली में बने मानव मुख जैसे आकार में काफी बड़े हैं। तीनों ओर की दीवारों के शीर्ष पर पूरी लम्बाई में पाषाणों पर सुन्दर अलंकरण किया गया है। यह अलंकरण अर्द्धकमल एवं त्रिभुजों की आकृति में है जो निर्माण के समय के मूल रूप में है।

अन्तराल के पश्चात् गर्भगृह का 4 फुट 5 इंच ऊँचा एवं 3 फुट 3 इंच चौड़ा द्वार है। गर्भगृह की लम्बाई 10 फीट 11 इंच और चौड़ाई 11 फीट है। गर्भगृह के मध्य में योनि है जिसके मध्य में कर्णेश्वर शिवलिंग स्थापित है। योनि एवं शिवलिंग दोनों मूल रूप में हैं जिनकी पूजा-अर्चना निरंतर चली आ रही है। गर्भगृह के दीवारों के शीर्ष पर अर्द्धकमल एवं त्रिभुज की पत्थर की कुराई का काम है जो मूल है। छत, कोनों को छोड़कर पूरी गोल है जिसमें अत्यंत सूक्ष्म तक्षण कला का मनोहारी कार्य है। शिवलिंग के पृष्ठ की दीवार में देवरा बना है जिसमें देवरे के जीर्णोद्धार काल की मूर्तियाँ शिव पार्वती (नन्दी पर), गणेश तथा कार्तिकेय (मयूर पर सवार) लगी है। यह मूर्तियाँ सुन्दर हैं तथा 17वीं सदी की है। मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार के दोनों ओर दीवारों पर इस मूल मन्दिर की प्राचीन मूर्तियाँ पुनर्रुद्धार के समय बेमेल तरीके से लगा दी गई। जिनका वर्णन निम्न है -

मंदिर परिसर में सहस्त्र शिवलिंग

मन्दिर के मुख्य द्वार के प्रवेश मण्डप के पीछे मन्दिर की पूर्वी अग्र दीवार पर दाहिनी ओर एक लकुलीश की मूर्ति लगी हुई है। इस मूर्ति में एक विशेष आकर्षण है। मूर्ति का मुख प्रसन्नता का भाव दर्शाता है। दोनों नेत्र बन्द परन्तु अतिसुन्दर हैं। लकुलीश पद्मासन में विराजमान है। उनकी ग्रीवा में अलंकृत कण्ठाहार उत्कीर्ण है तथा कानों में सुन्दर कर्णफूल हैं। शीश पर घुंघराली केश राशि अनेक अंलकरणों से युक्त है। पद्मासन में वे उर्ध्वलिंगी हैं। मूर्ति में कानों के कुण्डल उनके दोनो कन्धों को छूते हुए अंकित हैं जिनमें नीचे 3-3 लटकन हैं। लकुलीश की नासिका कुछ भग्न है तथा उनके पैरों के नीचे पूरी लम्बाई में चार कमल पंखुड़ियाँ हैं। उनके बायें ऊपर उठे एक हाथ में दण्ड तथा दायें ऊपर उठे हाथ में संभवतया बिजौरा फल है। लकुलीश का दैहिक

स्वरूप पुष्ट है। उनके बायें कंधे से यज्ञोपवीत कमर के निचले भाग तक उत्कीर्ण है। मूर्ति के शीश के बायें-दायें दोनों ऊपरी कोनों में दो पद्मासन लघु देव मूर्तियाँ हैं। लकुलीश की यह मूर्ति दो कलात्मक रथिकाओं के मध्य में है। इन रथिकाओं पर घटपल्लव व अन्य अलंकरण उत्कीर्ण हैं।

इस मूर्ति के बायीं ओर की दीवार पर एक देवी मूर्ति लगी है। देवी के चार हाथ हैं, उनके शीश पर सुन्दर विन्यास वाली केश राशि है। देवी के बड़े कानों में सुन्दर कर्णफूल सुशोभित हैं। कटि कमनीय और पतली है। कटि के निचले भाग में नितम्बों के ऊपर सुन्दर मेखला का अंकन है तथा इस मेखला के नीचे दोनों चरणों में वस्त्र उत्कीर्ण है। मूर्ति में देवी का मुख कुछ भग्न हैं। उनके चार हाथ है इनमें दो ऊपर उठे हुए तथा दो नीचे की ओर हैं। देवी के शीश के ऊपर का भाग पुष्प-पत्तियों से अलंकृत है।

मन्दिर के शिखर के उत्तरी भाग के मध्य में एक मूर्ति नृत्य गणेश की लगी है। मूर्ति में गणेश का मुख दाहिनी ओर है तथा सूंड बायीं ओर मुड़ी हुई है। मूर्ति में गणेश चतुर्भुज है तथा इनका बाँया कान आकार में बड़ा है। इसी प्रकार से बायीं ओर दाँत, सूंड के नीचे उत्कीर्ण है। गणेश के दोनों चरण सुन्दर नृत्य मुद्रा में हैं तथा उनके मस्तक पर भी सुन्दर अलंकरण उत्तीर्ण हैं। छोटी होने के उपरान्त भी इस नृत्यरत गणेश मूर्ति में आकर्षण है।

मन्दिर परिसर के दक्षिणी पूर्वी भाग में पूर्वी किनारे पर एक भूमिगत शिवलिंग है, जो अत्यधिक पालिश किया हुआ पीत प्रस्तर का एकदम गोल है तथा सारे परिसर के सभी शिवलिंगों में विशिष्ट है। इसके ऊपर चारों ओर एक षट्कोणीय चबूतरा है जिसके ऊपर के खम्भों पर सुन्दर छत्री बनी है जो 17वीं सदी की है। पार्क के कोने में दीवार के सहारे एक भव्य विष्णु मूर्ति है जो चौकोर आले में है। ये मूर्ति चतुर्भुजी है, विष्णु के दो ऊपर उठे हाथों में से बायें हाथ में गदा है तथा दाहिने हाथ में सुन्दर चक्र का अंकन है नीचे के बायें हाथ में शंख का अंकन है तथा नीचे का दायाँ हाथ भग्न है। मूर्ति में विष्णु के मस्तक पर अलंकृत मुकुट स्पष्ट है। उनके गले में कण्ठहार है तथा उभरा वक्ष है, कटि पतली है। कानों में धारण किये कर्णफूल हँसली तक दोनों ओर आये हुए हैं। कमर में करधनी का अंकन है। कमर के मध्य से आगे बीच से लटका हुआ एक अधोवस्त्र उत्कीर्ण है। दोनों बाजुओं के बाजूबंध के नीचे से चल कर एक सुन्दर मेखला घुटनों के नीचे तक आयी हुई है। विष्णु के मस्तक के पृष्ठ में एक गोलाकार आभामण्डल है। उक्त वर्णित सारी मूर्तियाँ जीर्णोद्धार से पूर्व मूल मन्दिर के शिखर भाग पर चारों ओर स्थापित थी तथा बाद में इन्हें बेमेल तरीके से लगा दिया गया परन्तु ये सब विवेच्य मन्दिर की ही हैं।

मन्दिर के आगे 2 छत्रियाँ एवं अनेक चबूतरे बने हुए हैं। इनमें से एक को छोड़कर सभी पर शिवलिंग स्थापित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब शैवाचार्यों या शैव धर्म के साधु-सन्यासियों की समाधियाँ हैं। परिसर में प्रथम चबूतरे पर एक छोटा चतुर्मुख शिवलिंग प्राचीन शिल्प का अनुपम नमूना है। यह शिवलिंग विवेच्य मूल मन्दिर के समकालीन प्रतीत होता है जिसका प्रमाण इसका ऊपर से क्षरण होना है। एक छत्री में साधारण शिवलिंग स्थापित है। तृतीय शिवलिंग एक बड़े चबूतरे पर स्थापित है जो पाषाण की योनि के मध्य चतुर्मुखी रूप में स्थित है। यह एक अद्‌भुत शिल्प का उदाहरण है। इसके चारों दिशाओं में लिंग पर बने चार मुखों पर बहुत ही सजीव भाव है जो पुरातन उत्कृष्ट कला के परिचायक है। शिव के इन चतुर्मुख रूपों में एक अघोर रूप का है जिसमें खुला मुख रौद्र रूप दर्शा रहा है, दूसरा रूप वामदेव का है जिसमें उत्कीर्ण मधुर मुस्कान मनोहारी है, तीसरा मुख रूप सद्योजात एवं चौथा तत्पुरुष का है, दोनों शुचिता एवं शान्त भाव लिए हैं। यहाँ के चबूतरे पर एक अन्य सहस्र शिवलिंग मूर्ति भी है जो पुरातन है। इस पर 999 लघुशिवलिंग हैं। एक ऊँची योनि पट्टिका पर चतुर्मुख शिवलिंग है जिसके समक्ष नन्दी स्थापित है।

मन्दिर की दक्षिणी दीवार में एक सुरक्षित शिलालेख लगा है जिसके अनुसार इस मन्दिर का निर्माण विक्रमी 795 (तदनुसार 738 ई.) में हुआ। इस मन्दिर को इस क्षेत्र के अधिपति धवल मौर्य के स्थानीय नृप ब्राह्मण शिवगण ने निर्मित करवाया था। इस शिलालेख की भाषा संस्कृत है एवं लिपि 'कुटिल'। इस लेख पट्ट की लंबाई 4 फुट 6 इंच तथा चौड़ाई 1 फुट ढाई इंच है। इसमें लिखे अक्षरों की साइज 3.8 इंच से 1.2 इंच के बीच की है। लेख में कुल 17 श्लोक हैं। शिलालेख में प्रारम्भ में ॐ नमः शिवाय लिखा है। इस शिलालेख में 'कण्व' तथा 'कण्वाश्रम' के उल्लेख दो स्थानों, 12वीं एवं 16वीं पंक्तियों में वर्णित है। इनमें स्पष्ट लिखा है कि राजा शिवगण ने यहीं कण्व ऋषि के आश्रम (कण्वाश्रम) में यह शिवजी का मन्दिर बनवाया। इस आशय का श्लोक द्रष्टव्य है -

'पुष्पाशोक समीरणेन सुरभावुत्फुल्ल चूतांकुरे
काले मत्त्विलोलषट् पदकुले व्यारूढ्दिग्मंडले।
जातेऽवांग निरीक्षणै ककथके नारीजनस्य स्मरे
क्लिप्तं सद्भवनं भवस्य सुधिया तेनेह कण्वाश्रमे।।'

भावार्थ - फूले हुए अशोक के वृक्षों से सुरभित, आम के वृक्षों पर जहाँ मौर खिल रहे हैं तथा जहाँ सभी दिशाओं में भ्रगर मदोन्मत होकर चंचल हो रहे हैं ऐसी वह ऋतु अर्थात् बसन्त ऋतु जिसमें स्त्रियों के स्मरण मात्र से ही कामदेव उत्पन्न हो जाता है उस बुद्धिमान राजा शिवगण ने यहाँ कण्व ऋषि के आश्रम में यह शिवजी का मन्दिर बनवाया।

इसी लेख की 16वीं पंक्ति के श्लोक में भी उक्त आशय दर्शाया गया है।

'एतत् कण्वाश्रमं ज्ञात्वा सर्वपापहरं शुभं।
कृतं हि मन्दिरं शम्भोः धर्मकीर्ति विवर्धनं।।'

भावार्थ - यह जानकर कि सर्वपापों को हरने वाला एवं शुभ यह कण्वाश्रम है, अपनी धर्म एवं कीर्ति की वृद्धि के लिए राजा ने इस शम्भू के मन्दिर का निर्माण कराया।

उक्त लेख के प्रारम्भ में शिव की स्तुति, महिमा, तत्पश्चात् मौर्य राजा धवल के मित्र ब्राह्मण वंशीय संकुक व उसकी पत्नी देगिणी तथा उनके पुत्र नृप शिवगण का वर्णन है। आगे इसी शिवगण द्वारा इस प्राचीन कण्वाश्रम नामक स्थान पर उक्त शिव मन्दिर बनवाने का उल्लेख हैं। लेख में मन्दिर की व्यवस्थार्थ ग्राम दान व लेख के रचनाकार आदि के नाम के उल्लेख हैं। इस प्रकार विक्रम 795 का यह लेख प्राचीन पौराणिक महर्षि कण्व के कण्वाश्रम का स्थान यहीं होने का एक प्राचीन संकेत करता है।

भारत में जब कभी कुटिल लिपि में लिखे शिलालेखों की चर्चा होती है तो कंसुवा के इस शिलालेख को अग्रगण्य प्रतिनिधि मानकर इसका उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। महान कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने द्वारा रचित नाटक चन्द्रगुप्त की भूमिका में भी कंसुवा के इस शिलालेख का वर्णन किया है जो इसके महत्व को दर्शाता है। अभी तक राजस्थान की धरती पर मौर्यवंश से सम्बन्धित पाया जाने वाला यह अन्तिम शिलालेख है। इसी लेख से ज्ञात होता है कि ईसा की 8वीं सदी तक राजस्थान में मौर्यवंशी शासकों का आधिपत्य रहा।

'अनहद' जैकी स्टूडियो
15-मंगलपुरा, झालावाड़-326001
(राजस्थान)
मो. 9079087965

(मगध में मौर्यों के बाद बैम्बिक ब्राह्मण वंश और फिर कण्व वंशी ब्राह्मणों का राज्य रहा। इस संदर्भ से राजस्थान में मौर्य वंशी राजाओं तथा ब्राह्मण राजाओं को लेकर शोधकार्य अपेक्षित है। चित्तौड़ के मान मौर्य की तरह उक्त धवल मौर्य के राज्य का भी निर्धारण होना चाहिए। पौराणिक आख्यान के अनुसार यहाँ कण्वाश्रम अनुमानित नहीं होता है, लगता है शिवगण ने अपने वंश पुरोधा महर्षि कण्व के नाम पर कण्वेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया। - संपादक)

न्याय-वैशेषिक सिद्धांतों में धर्म का स्थान

डॉ. सुप्रिय राय

शोध सारांश : न्याय-वैशेषिक दर्शन भारतीय दर्शन के प्रमुख शास्त्रों में से एक है। यह मुख्य रूप से तर्क, प्रमाण और वास्तविकता की प्रकृति पर ध्यान केंद्रित करता है। न्याय और वैशेषिक दर्शन के शास्त्रियों ने धर्म (धर्म का अर्थ है आचार, नियम और कर्तव्य) को प्राकृत और दैवीय सिद्धांतों के आधार पर समझने की कोशिश की है। न्याय-वैशेषिक दर्शन ने धार्मिक स्वरूप को बहुत अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत विश्लेषण में न्याय-वैशेषिक दर्शन में ईश्वर की भूमिका, आत्मा की वास्तविकता, मोक्ष की अवधारणा और धर्म की परिभाषा को स्पष्ट रूप से समझाया गया है। आप यदि चाहें, तो इस विचारधारा को और गहराई से देख सकते हैं या उसे अलग-अलग कोणों से जोड़ सकते हैं। **मुख्य शब्द :** मोक्ष, आत्मा, अचेतन, ईश्वर, अदृष्ट, ईश्वरेच्छा।

विषय प्रवेश - भारतीय दर्शन के षड्दर्शन में न्याय और वैशेषिक दर्शन का विशेष स्थान है। ये दोनों दर्शन यथार्थ को तर्क एवं विश्लेषण द्वारा समझाने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि इनका प्रमुख उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है, तथापि मोक्ष तक पहुंचने का मार्ग धर्म से होकर ही जाता है। अतः न्याय-वैशेषिक दर्शन में धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। अन्य भारतीय दर्शनों की भांति न्याय दर्सन में भी धर्म का परम लक्ष्य आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप में है, अर्थात् आत्मा को शरीर, इन्द्रियों तथा सांसारिक विषयों के बंधनों से मुक्त रख मोक्ष की प्राप्ति कराना ही धर्म का मुख्य उद्देश्य है। सामान्यतः धर्म का अर्थ व्यक्ति के अपने कर्तव्य और सदाचारपूर्ण कर्म से लिया जाता है। न्याय दर्शन में भी कर्म को विशेष महत्व दिया गया है, परंतु यह कर्म सामाजिक न होकर वैयक्तिक उत्थान के लिए है। इसका सीधा संबंध व्यक्ति के आत्मिक कल्याण और मोक्ष प्राप्ति से है, न कि समाज की संरचना या सुधार से। न्याय दर्शन के अनुसार, धर्म वह साधन है जिससे आत्मा का अज्ञान दूर होता है और वह साक्षात्कार स्वरूप को प्राप्त करती है। इसलिए इस दर्शन का केन्द्रबिंदु वैयक्तिक मोक्ष है जो सत्यज्ञान और धर्मयुक्त आचरण से संभव होता है। गौतम के न्यायसूत्र में कहा गया है-- 'धर्मो हि मोक्षसाधनम्।' अर्थात्, धर्म वही है जो मोक्ष का साधन बने। धर्म वह आचरण या कर्म है जिसके द्वारा आत्मा जन्ममरण के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करती है। यहाँ 'धर्म' केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि वह सदाचारपूर्ण आचरण है

जो सत्यज्ञान की ओर ले जाता है। इस प्रकार, न्याय दर्शन में धर्म को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है - धर्म से चित्तशुद्धि होती है, चित्तशुद्धि से ज्ञान, और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक कणाद ने धर्म की परिभाषा दी है **"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"**।[1] अर्थात जिससे लौकिक सुख (अभ्युदय) और पारलौकिक कल्याण (निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष) की प्राप्ति होती है, वही धर्म है। धर्म वह है जो मनुष्य को अभ्युदय (लौकिक सुख) तथा निःश्रेयस (मोक्ष) की ओर ले जाता है। दृष्ट धर्म-- वह है जो प्रत्यक्ष रूप से शुभकर्मों के रूप में दिखाई देता है, जैसे सत्य बोलना, दान देना, अहिंसा आदि। अदृष्ट धर्म-- वह सूक्ष्म शक्ति है जो कर्म के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और ईश्वर की इच्छा से जीव को सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि का अनुभव कराती है। इस प्रकार, न्याय-वैशेषिक मत में धर्म को कर्मप्रधान, फलदायक और आत्मकल्याणकारी तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। न्याय-वैशेषिक मत में धर्म का स्वरूप कर्मात्मक माना गया है, यह कोई केवल मानसिक भाव नहीं, बल्कि ऐसा कर्म या आचरण है जिससे आत्मा का कल्याण हो। धर्म दृष्ट (सत्कर्म) और अदृष्ट (कर्मफल की अदृश्य शक्ति)- दोनों रूपों में फल प्रदान करता है।

धर्म का वैशेषिक दर्शन में स्थान

वैशेषिक दर्शन के अनुसार यह संसार एक लीलास्थल है-- अर्थात् यह ईश्वर की सृष्टि केवल भोग या खेल के लिए नहीं, बल्कि जीवों की उन्नति और मोक्ष के लिए रची गई है। ईश्वर ने इस जगत में एक ऐसी व्यवस्था की है जहाँ प्रत्येक जीव अपने धर्म और कर्मफल के अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करता है तथा अपने आत्मिक विकास की दिशा में अग्रसर होता है। सृष्टि का प्रत्येक कार्य धर्म तथा अदृष्ट (कर्मफल की अदृश्य शक्ति) की दृष्टि से ही संचालित होता है। ईश्वर इन अदृष्ट शक्तियों का संचालक है, जो जीवों के कर्मों के अनुसार सृष्टि, स्थिति और प्रलय की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। अतः वैशेषिक दर्शन में सृष्टि का उद्देश्य केवल भौतिक जगत की रचना नहीं, बल्कि जीव के आत्मकल्याण और मोक्ष की व्यवस्था है- जिससे प्रत्येक आत्मा अपने धर्म का पालन करते हुए अन्ततः निःश्रेयस (मोक्ष) को प्राप्त कर सके।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म केवल लौकिक आचरण या सामाजिक नियम नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक सिद्धांत है, जो जीव की उन्नति और मोक्ष का साधन बनता है। संसार की समस्त घटनाएँ धर्म और कर्मफल की दृष्टि से संचालित होती हैं। जीव अपने पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगता है और धीरे-धीरे अपने आत्मस्वरूप की ओर अग्रसर होता है। "वैशेषिक के अनुसार वेद ईश्वर वाक्य है। ईश्वर नित्य, सर्वज्ञ और पूर्ण हैं। ईश्वर अचेतन अदृष्ट के संचालक हैं। ईश्वर इस जगत का निमित्त कारण और परमाणु उपादान कारण है।"[2] संसार के सभी भौतिक पदार्थ चार प्रकार के कणों से बने हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। इसलिए, इस सिद्धांत को "परमाणुवाद" भी कहा जाता है। हालांकि, परमाणुओं का संयोग और वियोग संयोगवश नहीं होता। वे कर्म के फल से प्रेरित होते हैं। इसके अलावा, शेष तत्व - आकाश, काल, मन और आत्मा परमाणु नहीं होते। इसलिए, कणाद का परमाणुवाद पाश्चात्य परमाणुवाद से भिन्न है। पाश्चात्य परमाणुवाद भौतिकवाद के सिद्धांतों का पालन करता है जिसके अनुसार ब्रह्मांड अनंत अंतरिक्ष में विभिन्न दिशाओं में गतिमान असंख्य परमाणुओं के आकस्मिक संयोग से निर्मित और रूपांतरित होता है। परमाणुओं की गति को निर्धारित करने वाली कोई चेतन शक्ति नहीं है। जड़ परमाणु स्वतः संयोजित होते हैं और फिर पृथक हो जाते हैं। इसका नियामक कोई चेतन पदार्थ नहीं, बल्कि प्राकृतिक नियम है। वैशेषिक परमाणुवाद

आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित है। "यह जड़ परमाणुओं के साथ-साथ आत्मा और ईश्वर जैसी सत्ताओं और कर्मवाद के नैतिक नियम को भी स्वीकार करता है।"[3] इसके अनुसार, ईश्वर परमाणुओं की गति का संचालक है, जो जीवों को उनके प्रारब्ध के अनुसार उनके कर्मों का फल भोगने के लिए परमाणुओं की क्रियाओं का सूत्रपात करता है। सृष्टि और संहार उसकी इच्छा से होते।

धर्म का न्याय दर्शन में स्थान

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। इस मोक्ष को ही निःश्रेयस, मुक्ति, अपवर्ग, निर्वाण आदि पदों से जाना जाता है। न्यायदर्शन की प्रवृति मोक्ष प्राप्ति के लिए ही है। अतः न्याय दर्शन के आदिसूत्र में उपर्युक्त प्रमाणों आदि के तत्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, और वह निःश्रेयस रहित बारह प्रमेयों में से अंतिम है। दुःख का परम निरोध ही मोक्ष है। न्याय सूत्र में मोक्ष का स्वरूप बताया गया है- **"तदत्यन्तविमोक्षः अपवर्गः"**।[4] अर्थात् अपवर्ग वह अवस्था है जिसमें आत्मा समस्त दुःखों से मुक्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रहती है। यह सुख की प्राप्ति नहीं, बल्कि दुःख की पूर्ण निवृत्ति है। अपवर्ग की अवस्था में आत्मा शुद्ध, चैतन्यमय, नित्य और स्वतंत्र रहती है। इस अवस्था में न कर्म है, न पुनर्जन्म, न राग-द्वेष, न अज्ञान। अतः न्याय दर्शन में अपवर्ग ही जीवन का परम पुरुषार्थ माना गया है - जो तत्वज्ञान और धर्माचरण द्वारा प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्ति का क्रम दूसरे सूत्र में निर्दिष्ट है - **"दुःखजन्मप्रवृत्ति-दोषमिथ्याज्ञानानां उत्तरोत्तरापाये तदन्तरापा-यादपवर्गः"।**[5] जन्म या पुनर्जन्म ही दुःख का कारण है। अतः पुनर्जन्म के नाश से समस्त दुःखों से पूर्ण मुक्ति संभव है। जन्म का कारण प्रवृत्ति ही है। कर्मों के शुभ-अशुभ फल प्रवृत्तियों से ही उत्पन्न होते हैं। इनका भोग पुनर्जन्म का कारण बनता है। राग, द्वेष, आसक्ति आदि दोषों से प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। शरीर आदि में दोष आत्म-ज्ञान के मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होते हैं। अतः मिथ्या ज्ञान के नाश से जन्म-निरोध में दुःखों से पूर्ण मुक्ति मिलनी चाहिए।

न्याय-वैशेषिक दर्शन में आत्मा का स्वरूप

आत्मा नित्य, सर्वव्यापक, अचेतन (स्वतः ज्ञाता नहीं) है। ज्ञान आत्मा का गुण है, स्वयं आत्या ज्ञाता कहलाता है। आत्मा और मन का संयोग ही ज्ञान का कारण है। मन सूक्ष्म, एकदेशीय और इन्द्रिय-आत्मा के मध्य सेतु है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, ज्ञान आदि आत्मा के गुण हैं। न्यायसूत्र में इन्हें आत्मा की पहचान कहा गया है। जीवात्मा अज्ञान और कर्म से बंधा है। परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और बन्धनरहित है। न्याय-वैशेषिक मत में आत्माएँ अनेक मानी गई हैं (प्रत्येक जीव के भीतर एक आत्मा)। जब आत्मा अज्ञान और कर्म से मुक्त होती है, तब वह अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होती है। **अन्नंभट्ट** ने अपने तर्कसंग्रह में वैशेषिक मत का सार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि- **"ज्ञानाधिकरण-मात्मा"**[6] अर्थात् ज्ञान का जो आश्रय या अधिष्ठान है, वही आत्मा है। न्याय-वैशेषिक के अनुसार आत्मा दो प्रकार की होती हैं जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न रूप से विद्यमान रहती है, अतः वह अनेक है। यह अज्ञान, राग, द्वेष और कर्म के कारण बंधनग्रस्त होती है। इसका ज्ञान अनित्य (क्षणिक) होता है अर्थात् जब शरीर और मन का संयोग होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके विपरीत परमात्मा एकमात्र, सर्वत्र सर्वज्ञ और नित्य है। वह नित्य ज्ञान का अधिकरण है, उसके ज्ञान में कभी क्षय या परिवर्तन नहीं होता। अतः न्याय-वैशेषिक मत में आत्मा के दो रूपों- जीव और ईश्वर को स्वीकार करते हुए उनके स्वरूप, गुण तथा ज्ञान की स्थिति का स्पष्ट विवेचन किया गया है।

संदर्भ

1. वैशेषिकसूत्र 1।1।2। **2.** शर्मा, चंद्रधर, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पृष्ठ 170। **3.** पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक

रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 102। **4.** न्यायसूत्र 1/1/22। **5.** न्यायसूत्र 1/1/2। **6.** तर्कसंग्रह।

सहायक ग्रंथ

1. न्याय दर्शनम्, गौतम, भाष्यकार स्वामी दर्शनानन्द, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-02, द्वितीय संस्करण-2003। **2.** वैशेषिक दर्शनम्, कणाद, भाष्यकार स्वामी दर्शनानन्द, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-02, द्वितीय संस्करण-2003। **3.** तर्कभाषा, केशव मिश्र, व्या.- डॉ. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2009। **4.** तर्कसड्.ग्रह, अन्नम्भट्ट, व्या.- डॉ. दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली, 11वाँ संस्करण। **5.** प्रशस्तपादभाष्यम्, प्रशस्तपाद, सं. नारायणमिश्र, काशी संस्कृतग्रन्थमाला, वाराणसी, 12वाँ संस्करण। **6.** न्यायदर्शनम् - फणिभूषणतर्कवागीशः, चतुर्थप्रकाशः 2011, पश्चिमवड्.ग-राज्य-पुस्तक-पर्षत्, कोलकाता। **7.** किरणावली, उदयनाचार्य, सं. विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी, बनारस संस्कृत सीरीज, सं. 25, 1973। **8.** तर्कसंग्रहः श्रीनारायणचन्द्रगोस्वामी, पुनः संस्करणः आश्विनः 1413, संस्कृतपुस्तकभाण्डारः, कोलकाता। **9.** न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, विश्वनाथ, सं. हरिराम शुक्ल, काशी संस्कृत सीरीज, 6, वाराणसी, 1972। **10.** सर्वदर्शन सड्.ग्रह, सम्पा, वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर, पूना, द्वितीय संस्करण-1951।

सहायकाध्यापक, संस्कृत विभाग,
कान्दि-राज-कॉलेज, कान्दि, मुर्शिदाबाद
ई-मेल : roy.supriya9999@gmail.com
डॉ. सोमनाथ दास
सहायकाध्यापक, संस्कृत विभाग,
आशुतोष-कॉलेज, कोलकाता
मो. 6295679971
ई-मेल : somnath.das@asutoshcollege.in

विरोधाभास !

जीवन में विरोध नहीं, वह विरोधाभासों का एक बड़ा जमघट है।

जो पाना चाहता है, वह दौड़ता-दौड़ता मर जाता है, उसे नहीं मिलता। पर, जो देता है, वही पाता है। पाने की शर्त है – देना।

जो झुकता है, वह ऊँचा उठता है। जो अकड़ कर रहता है, वह गिरता है। घमंड में दम ही फूलता है, फैलता नहीं।

संसार छाया की तरह है, अपनी छाया को लेने दौड़ो, वह हाथ नहीं आती, आगे सरकती है; उससे पीठ मोड़ो, वह पीछे-पीछे लगी रहेगी।

जिन लोगों ने कहा– 'यह संसार मेरा है, यहाँ खूब खाएंगे, पीएंगे, मौज करेंगे।' उनको धूल बनाकर मिटा दिया।

जिन्होंने कहा–'संसार नाशवान है, यहाँ घर कैसा।' उन्हीं विभूतियों को संसार ने अपनी स्मृति में संजोकर रखा।

जिसने कहा– 'मैं बड़ा हूँ।' इतिहास ने कहा– 'तू तुच्छ है।' जिसने कहा– 'मैं तो महापुरुषों के चरणों की धूलि हूँ।'

इतिहास ने कहा– 'तू महान है।'

मारवाड़ में नाथ सम्प्रदाय का राजनीतिक वर्चस्व

डॉ. निशा भारद्वाज

परिचय : यह लेख 19वीं सदी के मारवाड़ राज्य की राजनैतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है, जिसमें राजा मानसिंह के शासन काल में नाथ संतों और ब्रिटिश सरकार की सहभागिता देखने को मिलती है। राजा मानसिंह को 1803 ई. में राज्य निर्वासन काल में देवनाथ आयस की 3 दिन बाद राजा बनने की भविष्यवाणी बाद मारवाड़ राज्य की सत्ता प्राप्त हुई थी। राजा विजयसिंह का पौत्र मानसिंह 10 साल से जालोर गढ़ में निर्वासन (1792-1803 ई.) का जीवन जी रहा था। मारवाड़ राजा भीमसिंह ने मानसिंह से जालोर किला खाली करवाने के लिए सेना खड़ी कर दी थी। तब मानसिंह ने आयस देवनाथ की सलाह पर कुछ दिन का समय मांगा था। इसी बीच राजा भीमसिंह का स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण अचानक निधन (1803 ई.) हो गया था। संतानहीन भीमसिंह के निधन बाद शक्तिशाली उमरावों के मानसिंह के पक्षधर बनने के कारण राजनैतिक परिस्थितियाँ उसके पक्ष में हो गई थीं। इसी कारण मानसिंह ने मारवाड़ राज्य प्राप्ति को देवनाथ आयस का आशीर्वाद और जलंधरनाथ की कृपा माना था। दूसरा, जालोर में विपरीत परिस्थितियों में निराशामय जीवन यापन के बीच देवनाथ की भविष्यवाणी के सच हो जाने के आभार स्वरूप राज्य में देवनाथ आयस की राजनैतिक सहभागिता को स्वीकारा था। साथ ही राज्य के प्रत्येक कार्य में नाथ संतों की भूमिका को आभार स्वरूप जतलाया था।

दूसरी तरफ 19वीं सदी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य विस्तार काल रूप में पहचानी जाती है। ब्रिटिश ने साम्राज्य विस्तार के तहत राजपूताना रियासतों पर अनेक प्रकार की सन्धि-शर्तें थोपकर राज्य अधिग्रहण नीति को साकार रूप दिया था। राजपूताना राज्यों को अपने संरक्षण में लेकर ब्रिटिश ने राजा से उनको मातहत शासक का दर्जा प्रदान किया था। इस सदी में ब्रिटिश ही नहीं, बल्कि अन्य लोगों जैसे धार्मिक सन्तों, सरदारों और जमींदारों ने भी सत्ता हस्तगत करने की कोशिश की थी। 19वीं सदी की राजनैतिक हलचल में जन्मी नव-व्यवस्था के तहत मारवाड़ राज्य में नाथ सन्तों की अवसरवादी राजनीतिक भूमिका देखने को मिलती है। इसी उथल-पुथल में मारवाड़ राज्य में नाथ संतों के सत्ता ग्रहण करने के आधार पर कुछ सवाल उठते हैं कि, 1803-43 ई. यानी 40 वर्ष के राजा मानसिंह के शासन काल में नाथों ने मारवाड़ की राजनीति में नाथ सन्त भागिता को किस रूप में पेश किया था? धार्मिक सन्त

होकर भी नाथ राजनीति क्यों कर रहे थे? नाथ राजनीति का स्वरूप कैसा था? मारवाड़ राज्य में राजां मानसिंह की राज्यसत्ता राजनैतिक शक्ति या नाथ अनुकम्पा राज्य को दर्शाता है आदि सवाल मेरे लेखन के अहम् पक्ष हैं। अपने सभी सवालों का उत्तर देने से पहले पाठकों को मारवाड़ में नाथ सम्प्रदाय के इतिहास, विवाह और देवनाथ की वंशावली आदि की जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक है।

नाथ : इतिहास, मारवाड़ और गृहस्थ नाथ - गोरखनाथ जी से शैव सम्प्रदाय यानी नाथ पन्थ का आरम्भ माना जाता है। नाथ परम्परा अनुसार 10वीं सदी में आदिनाथ शिव के नाम पर योगी के स्थान पर नाथ शब्द अपना कर गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्यों ने अपनी अलग पहचान स्थापित की थी। 13वीं सदी में गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य जलंधर का जालोर में जन्म हुआ था। जलंधर ने नाथ योगी बनकर जालोर की जलंधर पहाड़ी को अपना निवास चुना था, अर्थात यहीं पर जलंधरनाथ जी ने नाथ संत बनकर योग साधना और तपस्या की थी। इस स्थान को कलशाचल कहा जाता है। नाथ संन्यासियों में नाथ योगी बनने पर नाम के पीछे नाथ नाम जोड़ने की परम्परा है। जलंधरनाथ जी ने अपने सेवक मेलनाथ को दर्शन देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का आदेश दिया था। इसी कारण नाथ सम्प्रदाय में दो तरह के संन्यासी होते हैं, एक तपस्यारत वैरागी जोगी, जो कि निरन्तर घूमते रहते हैं। दूसरे, गृहस्थ नाथ सेवक होते हैं, जो कि पाव पंथी कहलाते है। पाव पंथी मेलनाथ के बाद जालोर आसन के योगरत सिद्धों में थाननाथ, साडापाव, केसरीपाव, महेसपाव, देवपाव, हरीपाव और देवनाथ हुए हैं। सिद्धराज सतसई में जालोर की गद्दी पर विराजमान आयस देवनाथ के पूर्वजों की सात पीढ़ियों का नाम सोरठे में मिलता है -

मेळा थांन मुद्राथ, गोयंद नाढादसम गिणां।
केहर मेस कृपाल, जिण घर देवा जेहड़ा।।[1]

मारवाड़ में जलंधरनाथ के शिष्यों का सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र जालोर है। यहीं पर गुरु चिड़ियानाथ जी का जन्म हुआ था। चिड़ियानाथ जी ने चिड़ियाटूक पहाड़ी पर अपना धुणा स्थापित करके योग और तपस्या की थी। राव जोधा ने राठौड़ राजवंश के शाही महत्व को स्थापित करने के लिए चिड़ियाटूक पहाड़ी को मेहरानगढ़ किले के निर्माण के लिए चुना था। किले की नींव की खुदाई के दौरान राव जोधा के अधिकारियों ने योगी चिड़ियानाथ को परेशान करके हटा दिया था। क्रोधित चिड़ियानाथ ने अपनी धुणी के अंगारों को झोली में डालकर बड़ी नामक गांव में जाकर डेरा जमाया था। गांव निवासियों ने चिड़ियानाथ के तेज को देखकर गांव के सूखेपन को दूर करने की प्रार्थना की थी, जिस पर गुरू चिड़ियानाथ ने गांव के तालाब को पानी से भर दिया था। राव जोधा ने गुरु चिड़ियानाथ के क्रोध और बड़ी गांव के पानी की समस्या को दूर करने की बात सुनकर उनको मनाकर लाने के लिए भाई चंपाजी को भेजा था। चंपाजी ने गांव पलासनी में गुरु चिड़ियानाथ जी के दर्शन करके उन्हें राव जोधा के आमंत्रण शब्द सुनाये, जिस पर गुरु चिड़ियानाथ जी ने कहा, किले का निर्माण करवाओ। दूसरा, जब तक किले पर चीलें उड़ती रहेंगी राठौड़ों का मारवाड़ पर राज रहेगा। तीसरा, जब तक झरना बहेगा तब तक किले में पानी की समस्या उत्पन्न नहीं होगी। यह कर गुरु चिड़ियानाथ जी ने अगले दिन समाधि ले ली थी, जिस पर राव जोधा को गहरा दुख हुआ। राव जोधा ने स्वयं गुरु की समाधि स्थल पर जाकर उनके शिष्य को गुरु की झोली, धुणे के अंगारे देकर उनकी गद्दी पर बिठाया। राव जोधा ने कमलनाथ का आसन स्थापित करवाकर उन्हें स्वर्ण और जमीन आदि देकर स्वयं का गुरु स्वीकारा था। पलासनी के गुरु चिड़ियानाथजी की आसन परम्परा के शिष्य सूचीः कमलनाथ, शिवनाथ, भरपूरनाथ, सिद्धनाथ, अजीतनाथ, लक्कड़नाथ, लालनाथ, शिवनाथ, सैजनाथ, सुंदरनाथ, कुलनाथ, माणकनाथ, गुणेशनाथ, जुगतनाथ, कृपानाथ, गैबीनाथ, मोतीनाथ,

फूलनाथ, चैननाथ और देवीनाथ। देवीनाथ ही राजा मानसिंह के गुरु थे।[2]

पाव पंथी मेलनाथ के गृहस्थ हो जाने के बाद मारवाड़ के गांव-गांव में गृहस्थी नाथ निवास करते हैं। ये लोग गृहस्थी जीवन के साथ नाथ परम्परा के सिद्धान्तों का पालन करते हैं, अर्थात गृहस्थी नाथ अपने नाम के साथ नाथ शब्द अपनी नाथ भक्ति पहचान सूचक जोड़ते है, जैसे कि जसनाथ और भैरूनाथ आदि। गृहस्थी नाथ की मृत्यु हो जाने के बाद पालथी मरवा कर उसे बिठाकर समाधि दिलवाई जाती है। उसके घर में नाथ संत मंत्र पढ़ते हैं, जिसे संखोद्धार कहा जाता है। मृत आत्मा को स्वर्ग में भेजने के लिए सीढ़ियाँ बनाकर जोत जलाकर मंत्रों का उच्चारण किया जाता है एवं उसके मृत्युभोज को भण्डारे की संज्ञा दी जाती है। गृहस्थी नाथ आपस में मिलने पर दो-दो बार आदेश-आदेश कहकर पुकारते हैं, जिसका अर्थ आत्मा, परमात्मा और जीवात्मा होता है। गृहस्थी किसी भी शुभ कार्य की शुरुआत अलख निरंजन पुकार कर करते हैं। सभी गृहस्थी नाथ कानों में कुण्डल (दर्शन), गले में काले ऊन की रुद्राक्ष डली माला और बीन पहनते हैं। गृहस्थी नाथ सफेद धोती और भगवा कुर्ता पहनकर कंधे पर अंगोछिया रखते हैं। वृद्ध विधवा तम्बाकू रंग का लंहगा, कुर्ती व कांचली पहनती है और युवा विधवा के वस्त्र नीले रंग के हो जाते हैं। क्योंकि इनमें विधवा पुनर्विवाह निषेध है। गृहस्थी नाथ अपनी परम्परा का आजतक पालन करते आ रहे हैं।[3] इस प्रकार नाथ पंथ की मारवाड़ में मेलनाथ से पाव पंथी शाखा का जन्म हुआ था। पाव पंथी शाखा में देवनाथ आयस की सात पीढ़ियाँ जालोर में जलंधरनाथ भगवान के मंदिर के पुजारी और आसन पद पर विराजमान रही थीं। देवनाथ आयस ने अपनी विद्वता और प्रभावशाली व्यक्तित्व से राजा मानसिंह को प्रभावित करके राठौड़ राजवंश के राजगुरु पद की प्राप्ति की थी, जिससे मारवाड़ के इतिहास में नाथों के संत से राजनैतिक व्यक्ति बनने और अवसान का इतिहास प्राप्त होता है।

राजा मानसिंह : सत्ता और नाथ - महाराजा मानसिंह री ख्यातानुसार 1803 ई. में राजा भीमसिंह की मृत्यु बाद जालोर शासक मानसिंह को इन्द्रराज और गंगाराम सिंघवी जैसे अन्य उमराव लोगों के समर्थन से राज्य प्राप्त हुआ था। मारवाड़ के राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होकर सर्वप्रथम मानसिंह ने आभार स्वरूप आयस देवनाथ के निवास गांव कायथा को आयसों का निवास-स्थल बनाकर सासंण दान घोषित कर दिया था। राजतिलक होने के बाद मानसिंह ने आयस देवनाथ को गुरु पद देकर राजसी तामझाम के साथ परिवार सहित जोधपुर बुलाया था।[4] गुरु पदवी संग मानसिंह ने आयस देवनाथ को 10000 रुपये के चौपड़ा और पांचू गांव का पट्टा जीवन निर्वाह के लिए इनायत किया था। इसके अलावा आयस को पोकरण परगने का मजल, धुनाड़ी और कींक जिले के गांव भी इनायत किए थे। 1804 ई. में मानसिंह ने माघ महीने की सुदी पंचमी को नागौरी द्वार के पास बने महामंदिर में जलंधरनाथ भगवान की प्राण-प्रतिष्ठा करवाकर आयस देवनाथ को मंदिर सुपुर्द किया था। राजा मानसिंह ने राजलोक, मुत्सदियों, उमरावों और अधिकारियों सहित मंदिर प्रतिष्ठा समारोह में उपस्थित होकर आयस को मंदिर दान-दक्षिणा और भेंट देकर सुपुर्द किया था। मानसिंह ने आयस आशीर्वाद से राज्य प्राप्ति के आभार स्वरूप नाथ पंथ को निजी भक्ति से राज्यधर्म में परिवर्तित कर दिया था, अतः जिस भी अधिकारी, मुत्सदी या हाकिम ने नाथ पंथ में श्रद्धा प्रकट नहीं की, उसको मृत्युदण्ड दिया जाता था। अपने 40 साल के राज्यकाल में लिखी गई प्रत्येक बही पर जलंधर नाथ सत्य छै लिखवाकर बही और नव-पृष्ठ का शुभारम्भ करवाया था।

मारवाड़ परगना री विगतनुसार राजा मानसिंह ने नाथ सम्प्रदाय में श्रद्धा प्रकट करके मारवाड़ राज्य के प्रत्येक परगने में जलंधर नाथ भगवान के मंदिर राज्य खर्च से बनवाने का हुक्म जारी किया था। आयस

देवनाथ और उनके भाइयों के जालोर के मकान पक्के बनवा दिए थे।[5] मानसिंह ने आयस देवनाथ के चारों भाइयों, भतीजों और पौत्रों को मंदिर, दान-दक्षिणा और आजीविका गांव प्रदान किए थे। आयस भाइयों यानी सूरतनाथ, ओपनाथ, हरनाथ और भीमनाथ को भी गुरु पदवी देकर अलग-अलग जीवन निर्वाह गांव पट्टे और मंदिर प्रदान किए थे। इस तरह पांचों भाइयों के अलग-अलग ठिकाने, घर और मंदिर बना दिए गए थे। गुलाबसागर के ऊपर निज मंदिर बनवाकर आयस के बड़े भाई सूरतनाथ को प्रधान पुजारी और हरनाथ को जालोर में सिरेमंदिर और खेड़ा गांव का पट्टा दिया था। ओपनाथ को जालोर का गोल गांव दिया था।[6] हालांकि आयस देवनाथ और भीमनाथ इकट्ठे रहते थे। परन्तु मानसिंह से मिलने वाले आदर, दान-दक्षिणा और आजीविका के कारण भीमनाथ का देवनाथ आयस संग मनमुटाव हो गया था। मानसिंह ने आयस भाइयों के बीच की हित-संघर्ष लड़ाई को देखकर 1821 ई. में उदयमंदिर बनवाकर भीमनाथ को कमान सौंपी थी।[7] मारवाड़ रा परगना री फरसत अनुसार सिवाना परगने का खोखरलाई गांव भीमनाथ को प्रदान किया गया था।[8] नाथ पंथ में मानसिंह के साथ राजलोक ने भी श्रद्धा प्रकट की थी। जलंधर नाथ भगवान के प्रति आदर प्रकट कर तंवर रानी ने धानमंडी में नाथ भगवान के लिए मायलो मंदिर बनवाया था।[9] पदमसर तालाब के ऊपर बड़ी भटियानी और तलेठी में टकसाल के पास बड़ी देवड़ी रानी ने नाथों के लिए मंदिर बनवाया था।[10] इन मंदिरों में मारवाड़ी प्रजा भी पूजा-अर्चना कर सकती थी। कपड़ा रा कोठार बही अनुसार राजा और राजलोक त्योहार-पर्वों पर नाथ सन्तों और जलंधर नाथ भगवान को वस्त्र, भोग-सामग्री, पेटिया, फल-फूल, मिठाई और रोकड़ उपहार स्वरूप भेजते थे।[11]

राठौड़ां री ख्यात अनुसार आयस देवनाथ के पिता महेसनाथ की मृत्यु होने पर उत्तर क्रिया के तहत राज्य की तरफ से भंडारा आयोजित किया गया था। राज्य कोष से सारी प्रजा को 2 रु. दक्षिणा देकर भोजन खिलाया गया था। 1809 ई. में आयस देवनाथ के पुत्र लाडूनाथ के जन्म लेने पर मानसिंह ने बड़े स्तर पर उत्सव का आयोजन करवाकर जोधपुर के प्रत्येक घर में 1-1 किलो गुड़ बँटवाया था। आयस की तीन बेटियाँ थीं। दो पुत्रियों का विवाह पालड़ी के जोगेश्वर कृपानाथ के पुत्रों से किया गया था। राजा मानसिंह ने हथलेवे में दोनों पुत्रियों को एक-एक गांव दिया था। तीसरी पुत्री का विवाह जालोर परगने के वांकड़ीयो बड़गांव में किया गया था। आयस चौरंगीपाव को जयपुर से जोधपुर में बुलाकर 5000 रुपये का पट्टा प्रदान किया था।[12] इस प्रकार राजा मानसिंह ने नाथ पंथ में भक्ति प्रकट करके देवनाथ आयस और उनके परिवार को राजकीय संरक्षण देकर, उनके, नाथ सन्तों और नाथ मंदिरों के प्रत्येक खर्च को राजकीय खर्चा स्वीकार किया था। जिसके कारण राज्य में नाथ पंथ और नाथ सन्तों का बहुत आदर किया जाता था।

इस प्रकार राजा मानसिंह ने राज्य लिखित बहियों की शुरुआत से लेकर प्रत्येक परगने में भगवान जलंधरनाथ के मंदिर बनवाकर नाथ पंथ में अपनी अटूट भक्ति को पेश किया था। मानसिंह ने आसय देवनाथ और उसके परिवार को भी गांव पट्टा से लेकर मकान सुविधा, गुरु पदवियाँ, मंदिर प्रधानगी और उनकी कन्याओं का विवाह भी शाही कोष से करवाया था। गुरु पुत्रियों को राजकुमारियों की तर्ज पर हथलेवे में जीवन निर्वाह गांव प्रदान किए थे।

राजा मानसिंह और नाथ सत्ता - महाराजा मानसिंह री ख्यातानुसार राजा मानसिंह ने नाथ पन्थ में श्रद्धा प्रकट करके राजकार्य उनके दिशा-निर्देशन में किया था। राजा मानसिंह ने दादा विजयसिंह की मृत्यु बाद 11 साल जालोर में निर्वासित व्यक्ति के रूप में व्यतीत किए थे। राजा भीमसिंह ने उत्तराधिकार समस्या के तहत जालोर की घेराबंदी करके मानसिंह को जालोर छोड़कर चले जाने के लिए विवश कर दिया था। 1803ई. में अचानक भीमसिंह की मृत्यु

होने पर राठौड़ राज्य की कमान मानसिंह के हाथों में आ गई थी। राजतिलक होने के बाद मानसिंह ने जालोर घेराबंदी के समय साथ छोड़कर जाने वाले आउवा के ठाकुर माधोसिंह पुत्र फतेहमल, सिम्भुमल, जीतमल, सूरजमल, इन्द्रमल, पंचोली तख्तमल, सिरीचंद, जेठमल और सिंघवी दौलतराम पर जुर्माना लगाकर कैद में डाल दिया था। कैद राठौड़ सरदारों ने मानसिंह की आयस देवनाथ में भक्ति और श्रद्धा देखकर आयस से प्रार्थना कर रिहाई प्राप्त की थी। सर्वप्रथम आयस देवनाथ ने उमरावों की रिहाई द्वारा अपने राजनैतिक प्रभाव को जाना था। आयस ने राजा और राजनीति में अपने प्रभाव और सर्वोच्च अधिकारों को जानकर राज-कार्यों और राजनीति के प्रत्येक मामले में हस्तक्षेप करना आरम्भ किया था। जिससे प्रत्येक राजनैतिक-आर्थिक मामलों में आयस से सलाह मशविरा किया जाता था। राठौड़ सरदारों ने भी आयस देवनाथ के राजनैतिक कद को देखकर पाला बदल लिया था। दीवान इन्द्रराज सिंघवी प्रत्येक कार्य आयस की देखरेख में करता था।[13]

राठौड़ां री ख्यात अनुसार मानसिंह ने देवनाथ आयस को अपना आराध्य मान लिया था। बीकानेर से राजनैतिक विवाद को युद्ध द्वारा समाप्त किया था। सन्धि शर्तों के तहत बीकानेर राजा से देवनाथ आयस को बीकानेर के 5 गांव भेंट करवाए थे। उदयपुर की बाई से विवाह और राजा भीमसिंह पुत्र धौकलसिंह के नाम पर जयपुर से चली आ रही रंजिश समाप्ति में भी देवनाथ आयस और इन्द्रराज ने मिलकर भूमिका निर्वाह की थी। इस प्रकार प्रत्येक राजनैतिक मागले में मध्यस्थता और सलाहकार भूमिका निभाकर आयस ने राजदरबार और राज्य में सर्वोच्च पद और अधिकार हासिल कर लिए थे। जिससे आयस और महामंदिर कर्मचारियों ने राज्य में मनमानी करनी आरम्भ कर दी थी। महामंदिर कामेतियों ने आसोप ठाकुर केसरीसिंह के चाकर को मंदिर झालरे से पानी भरने पर गाली गलौज करके पिटाई और प्रजा पर अत्याचारी करों का आरोपण करके वसूली की थी। जिससे जनता और राज्य मुत्सदी नाथ सन्तों के विरोधी बन गए थे। आयस देवनाथ और दीवान इन्द्रराज कारण अखैचंद ग्यानमल तरक्की, उच्च पद प्राप्ति और आर्थिक फायदा प्राप्त नहीं कर पा रहा था। अतः उसने प्रजा और उमरावों की मनोदशा जानकर नवाब मीरखान को खर्ची ब़ावत उकसाकर देवनाथ आयस और इन्द्रराज की गढ़ में ही हत्या करवा दी थी। मानसिंह ने गुरु आयस देवनाथ को गउफखाने के पास समाधि दिलवाई थी। आयस के सम्मान और दुख में तीन दिन गढ़ के द्वार बंद रखकर दशहरा त्योहार की राम की झाँकी की भी अगवानी नहीं की गई थी।[14]

महाराजा मानसिंह री ख्यातानुसार 1816 ई. में सरदार अखैचन्द आसय देवनाथ के भाई भीमनाथ संग मिल गया था। भीमनाथ ने नाथों के प्रति राजा की भक्ति और रुख जानकर अखैचन्द संग मिलकर राजनैतिक सर्वोच्चता और महामंदिर प्रधानगी प्राप्त करने के लिए योजना बनाई थी। योजना के तहत भीमनाथ ने मानसिंह को भावनात्मक आधार पर प्रताड़ित करके कंवर छतरसिंह को युवराज, मानसिंह को राजनैतिक निर्वासन, सिंघवी लोगों पर देवनाथ आयस की हत्या का इल्जाम, राज्य राजनीति और मुसायबों को वैचारिक आधार पर बांटा (भीमनाथ-उदयमंदिर और लाडुनाथ-महामंदिर) और आयस देवनाथ पुत्र लाडुनाथ को महामंदिर पुजारी नियुक्त करवाया था। इस प्रकार भीमनाथ ने मारवाड़ राज्य में राजनैतिक-धार्मिक सत्ता हासिल की थी। वहीं दूसरी तरफ राजनीति से बेखबर कंवर छतरसिंह ने ब्रिटिश संग सन्धि करके मारवाड़ को मातहत राज्य बना दिया तथा नाथों का एकछत्र राज कायम करवा दिया था। चाटुकार लोगों से घिरे कंवर की अत्यधिक मद्यपान कारण 1817 ई. में मृत्यु हो गई थी। ब्रिटिश राज्य ने भारत में अपने राजनैतिक हितों के तहत मारवाड़ राज्य में नाथ मनमानी देखकर अपनी पकड़ स्थापित करने और संरक्षण करों की बढ़ती रकम को प्राप्त

करने के लिए मानसिंह को दोबारा तख्त पर विराजमान किया था। मानसिंह ने ब्रिटिश संरक्षण में विरोधी उमरावों और अधिकारियों को कैद करके जुर्माना वसूला तथा कंवर की मृत्यु कारण लोगों को जुर्माना सहित मृत्युदण्ड दिया था। परन्तु आयस लाडुनाथ ने अपनी राजनैतिक समझ और प्रभाव का लाभ उठाकर कुछ सरदारों पर जुर्माना आरोपित करवाकर रिहा करवाया था।[15]

राठौड़ां री ख्यातानुसार आयत लाडुनाथ ने राजा मानसिंह का संरक्षण और हामी प्राप्त कर अपना राज्य, राजनीति और दरबार में प्रभाव और रुतबा कायम किया था। अब लाडुनाथ की सलाह से राजव्यवस्था और आर्थिक नीतियों को कार्यान्वित किया जाने लगा था। लाडुनाथ की कृपा से फतेराज ने दीवान पद, 1827 ई. में महामंदिर कामेतियों की सलाह से आउवा की घेराबंदी, 4 रु. घर-बाव कर प्रति घर वसूली, अधिकारियों की नियुक्ति, कैद, जुर्माना और अंग्रेजों के डर से भागे नागपुर राजा को महामंदिर ने शरण दी थी। इस प्रकार नाथों के गुरु आयस की मारवाड़ राज्य की राजनीति में राजा जैसी स्थिति थी। जिससे आयस परिवार में अधिकारों और एकाधिकार के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया था। यह झगड़ा लाडुनाथ और भीमनाथ से आगे बढ़कर पिता-पुत्र (भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ) के बीच भी खड़ा हो गया था। 1828 ई. में लाडुनाथ की मृत्यु बाद भीमनाथ ने भावनात्मक आधार पर राजा मानसिंह को बरगलाकर पुत्र लक्ष्मीनाथ को आयस का वारिस और समस्त अधिकारों का उत्तराधिकारी घोषित करवा दिया था। महत्वाकांक्षा संघर्ष में लक्ष्मीनाथ ने पिता भीमनाथ को राजनैतिक तरक्की और एकाधिकार शासकीय अधिकारों में बाधा मानकर महामंदिर और राजनीति से जबरन निर्वासन दिलवा दिया था।[16]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आयस परिवार ने राजा मानसिंह से श्रद्धा के नाम पर सत्ता हस्तगत कर ली थी। हालांकि मारवाड़ में औपचारिक तौर पर मानसिंह राजा था, लेकिन शासकीय अधिकार आयस परिवार यानी महामंदिर आयस के पास थे। शासकीय अधिकारों के जुनून में आयस परिवार में भी विवाद उत्पन्न हो गए थे। इस विवाद में चाचा-भतीजा, पिता-पुत्र के बीच का झगड़ा प्रकट होता है। जिसमें मानसिंह की अकुलाहट और बेबसी देखने को मिलती है। अर्थात हमें मारवाड़ की राजनीति के प्रत्येक पक्ष में आयस राजनीति देखने को मिलती है, वहीं दूसरी तरफ मानसिंह अपने नाथ संतों यानी देवनाथ और उसके भाइयों में अपनी अटूट श्रद्धा कारण एक कमजोर शासक की भूमिका अदा करता दिखता है। सवाल उठता है कि राजा मानसिंह राठौड़ राजवंश का शाही खून था। मानसिंह ने बचपन में ही माता-पिता की मृत्यु बाद गुलाबराय पासवान के संरक्षण में जालोर गढ़ प्राप्त किया था। इस प्रकार विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए मानसिंह को एक शक्तिशाली व्यक्तित्व के साथ राज्यकार्य करना चाहिए था, परन्तु वह आस्था के तहत अंधभक्ति करके स्वयं राज निर्वासन भोगने के लिए राजी हो गया था। हमें मानसिंह के व्यक्तित्व और मनोदशा को समझना होगा, तभी हम उसकी स्थिति को न्यायसंगत ढंग से समझ पाएँगे।

सवाल-जवाब और स्पष्टीकरण - महाराणा विजैसिंघजी री ख्यातानुसार राजा विजयसिंह की देवड़ी रानी पुत्र गुमानसिंह की 1791ई. में मृत्यु हो गई थी। कंवर पत्नी चौहान रानी अपने 8 साल के पुत्र मानसिंह को उसकी दादी के संरक्षण में छोड़कर सती हो गई थी।[17] विजयसिंह की पासवान गुलाबराय ने पुत्र तेजसिंह के निधन बाद कंवर शेरसिंह और मानसिंह को दत्तक पुत्र की भांति रखना आरम्भ कर दिया था। गुलाबराय ने दोनों कंवरों की शक्तिशाली भीमसिंह से खतरा देखा था। 1791ई. में गुलाबराय पासवान ने नाजर संतोखराम की सहायता से मानसिंह को महल से अपने संरक्षण में लेकर भगवान मुरली मनोहर के दर्शन करके महाड़ोल में बैठकर कंवर संग मायला

बाग चली गई थी। पासवान गुलाबराय ने भीमसिंह की राजकुवरों को मारकर एकल उत्तराधिकारी प्रस्तुति की राजनीति को समझ लिया था, इसलिए उसने कंवर मानसिंह को बचाने के लिए ड्योढ़ी दारोगा को रिश्वत देकर चुपचाप कंवर को रात के अंधेरे में मयूरध्वज गढ़ से बाहर निकाला था। उसने कंवर शेरसिंह और मानसिंह की विकट परिस्थितियों को देखकर अपनी जागीर जालोर किले में भेज दिया था, ताकि वे दोनों सुरक्षित रह सकें ।[18] इस प्रकार कंवर मानसिंह के बाल मन की व्यथा को देखें तो पता चलता है कि 8 साल का माता-पिता के साये से हीन बालक एक कमजोर दादा से आखिरी वक्त में मिलकर जान बचाने के लिए महल से बाहर आ जाता है, जो कि राजवंशी होकर भी पासवान के साये में जी रहा था। मानसिंह जान बचाने के लिए दादा के अंतिम संस्कार में भी शामिल नहीं हुआ था। संरक्षिका गुलाबराय की हत्या और भीमसिंह के राजा बनने के बाद मानसिंह के लिए परिस्थितियाँ और भी खराब हो गई थीं, क्योंकि उमरावों ने उसका साथ छोड़ दिया था।

महाराजा मानसिंह री ख्यात अनुसार राजा बनने के बाद भीमसिंह ने भाई--बन्धुओं की हत्या करके जालोर किले पर फौज लगा दी थी। 1803 ई. में भीमसिंह की सेना ने जालोर में मानसिंह को घेरकर रसद सप्लाई काट दी थी। मानसिंह को दीवाली तक किला खाली करने की मोहलत दे रखी थी। इसी मोहलत काल में मानसिंह जालोर किले समीप जलंधर नाथ मंदिर में दर्शन के लिए गए थे। दर्शन समय पुजारी देवनाथ आयस ने कहा, आप किला काती सुद 6 तक खाली नहीं करेंगे तो आप मुल्क के मालिक बनेंगे। आयस देवनाथ में विश्वास प्रकट कर मानसिंह ने विकट परिस्थितियों में कुछ और दिन गुजारने का मन बना लिया और देवनाथ को वचन दिया, यदि मारवाड़ राज्य मिला तो नाथों का राज्य में बोलबाला रहेगा। काती सुद 4 को राजा भीमसिंह की अचानक स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण अकाल मृत्यु हो गई और मानसिंह मारवाड़ का राजा बन गया।[19] इस प्रकार वचन पूर्ति के तहत मानसिंह ने देवनाथ आयस और उसके परिवार को राजकीय संरक्षण प्रदान किया था। अतः मानसिंह भयावह राजनैतिक वातावरण में रहकर सरदारों और मुत्सदियों के रवैये से व्याकुल और असुरक्षित हो गए थे, ऐसी परिस्थिति में देवनाथ आयस की रहनुमाई और आशीर्वाद की सच्चाई ने मानसिंह को उनका भक्त बना दिया था। इसी कारण मानसिंह ने देवनाथ की हर बात को बिना राजनीति के आशीर्वाद बतौर लेकर उनके परामर्श को अहमियत प्रदान की थी। यह स्थिति मानसिंह के एकाकीपन और असुरक्षा को दर्शाता है।

इस प्रकार राजा की श्रद्धा को आयस भाइयों ने अपनी सत्ता और राजवी एकाधिकार की दिशा में परिवर्तित कर दिया था। एक तरफ मानसिंह ने ब्रिटिश सरकार द्वारा नाथ संतों की गिरफ्तारी और आयस परिवार की राजनीति से निर्वासन की नाराजगी और पीड़ा को अपना दुख बना लिया था। वहीं दूसरी तरफ नाथ संतों और आयस परिवार ने मानसिंह की भक्ति को उसकी कमजोरी बनाकर उसको राजनीति से विलग कर एकाकी बनाकर अपने प्रभुत्व स्थापना की कामना में नाथ पंथ, स्वयं और राज्य विनाश को आमन्त्रण दे दिया था। आयस लाडुनाथ, भीमनाथ और लक्ष्मीनाथ ने मनमानी और अत्यधिक करों का आरोपण करके मारवाड़ी अर्थव्यवस्था का विनाश कर दिया था, जिसके कारण ब्रिटिश को मारवाड़ में प्रवेश करने और प्रभुत्व स्थापित करने का मौका मिल गया था। ब्रिटिश अधिकारी सदरलैंड ने कम्पनी की बढ़ती संरक्षण रकम का तगाजा करके नाथों की राजनीति पर लगाम कसने का संदेश दिया था। परन्तु मानसिंह ने नाथ पंथ में अपनी भक्ति कारण नाथ संतों की मनमानि को न तो रोका और न ही उन्हें राज्य से बाहर खदेड़ा था, जिसके कारण सदरलैंड ने नाथ संतों की लूटपाट और मनमानी को रोकने के लिए गिरफ्तार करके जेल में डालने का आदेश प्रसारित कर दिया

था। नाथ संतों का ब्रिटिश सरकार के उत्पीड़न से मचा हाहाकार और राज्य निर्वासन राजा मानसिंह का असाध्य रोग बन गया था। इसी पीड़ा निवारण के तहत ब्रिटिश सरकार का विरोध करते हुए मानसिंह ने संन्यासी बनकर मौत को गले लगाया था।

इस प्रकार ख्यात बहियों से मिली जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि भयभीत, एकाकी, अविश्वासपूर्ण व्यवहार और असुरक्षित राजा मानसिंह के लिए आयस परिवार और नाथ पंथ उम्मीद की किरण थे। इसी रोशनी को अपने जीवन की सकारात्मक ऊर्जा बनाने की चाह में नाथ संतों और आयस परिवार की इच्छाएँ मानसिंह का दुख और मृत्यु का कारण बन गई थीं। आयस परिवार मानसिंह से राज्य कार्यों पर मुहर लगाकर उनको कार्यान्वित करवाते थे अर्थात आयस परिवार और नाथ संत राज्य योजनाऐं बनाकर स्वयं हित सिद्धि और धन गबन करते थे। इस प्रकार 40 साल का राजा मानसिंह का शासन काल नाथ संतों और आयस परिवार की राजनीति का काल था।

संदर्भ

1. राजस्थान के नाथ सम्प्रदाय का सांस्कृतिक इतिहास, कमल किशोर सांखला, (जोधपुर, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, 2011), पृष्ठ संख्या, 61-63। **2.** वही, पृष्ठ संख्या, 64-65 और जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल, पद्मजा शर्मा, (जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1974), पृष्ठ संख्या 137-141। **3.** राजस्थान के गृहस्थी नाथों का सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन, सदीक मोहम्मद को देखिए राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय, संपा. विक्रमसिंह भाटी, (जोधपुर, राजस्थानी शोध संस्थान 2019), पृष्ठ संख्या, 74-79। **4.** महाराजा मानसिंह री ख्यात्: संपा. नारायणसिंह भाटी, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1979), पृष्ठ संख्या, 3-23 और राठौड़ां री ख्यात भाग-111 संपा. हुक्मसिंह भाटी, (राजस्थान, इतिहास अनुसंधान संस्थान और राजस्थानी ग्रन्थागार, 2007), पृष्ठ, 707। **5.** मुहणौत नैन्सी मारवाड़ परगना री विगत भाग-1, संपा. नारायणसिंह भाटी (जोधपुरः राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1968), पृष्ट, 574। **6.** राठौड़ां री ख्यात, भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 711-57 और महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 28-89, बड़े भाई हरनाथ, सूरतनाथ, छोटे भाई ओपनाथ, भीमनाथ। **7.** महाराजा मानसिंह री ख्यात संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ, 29। **8.** मारवाड़ रा परगना री फरसत, संपा. हुक्मसिंह भाटी (जोधपुरः राजस्थान शोध संस्थान, 2005), पृष्ठ 41। **9.** महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ, 89। **10.** राठौड़ां री ख्यात, भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 766। **11.** कपड़ा रा कोठार बही, बही नः 18, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर। **12.** राठौड़ा री ख्यात भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 720-66। **13.** महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 37-89 और राठौड़ां री ख्यात, भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 719-53। **14.** महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 101-04 और राठौड़ां री ख्यात, भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 760-81। **15.** राठौड़ां री ख्यात, भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 783-809 और महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 107-38. भीमनाम ने महामंदिर पर कब्जा कर लाडुनाथ को तंग करना आरम्भ कर दिया था। लाडुनाथ ने निज मंदिर में रहकर महाराज को गिरनार चले जाने की धमकी देकर महामंदिर की कमान प्राप्त की थी। महाराज ने भीमनाथ को प्रसन्न रखने के लिए उदयमंदिर में उनके लिए झालरा और आयस देवनाथ के बराबर गांव पट्टा प्रदान किया था। लाडुनाथ ने भी अपने पिता की तरह राजनीति करके राजनैतिक नीतियों को सम्पादित करवाया था। इसी कारण उसका दरबार और सरदारों पर राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित था। इस प्रकार लाडुनाथ ने अनौपचारिक आधार पर राजवी अधिकारों का उपभोग किया था। **16.** राठौड़ां री ख्यात, भाग-111, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 811-38। **17.** महाराजा विजैसिंह री ख्यात, संपा. ब्रजेशकुमारसिंह, पृष्ठ, 172। **18.** मारवाड़ री ख्यात, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 10-134। **19.** महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा. नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 3-5।

मकान नं. 461, नजदीक सीताराम मंदिर, दोपलान पाना, टीकरी कलॉ गांव, नई दिल्ली-110041

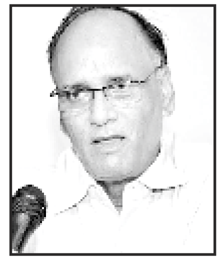

फीरोजाबाद जनपद के स्वतन्त्रता संघर्ष की अविश्रुत गाथाएँ

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

अपनी सतरंगी चूड़ियों और अपने उन्नतिशील काँच उद्योग के बल पर विश्वविख्यात फीरोजाबाद नगर मराठा शासनकाल में स्वतन्त्र क्षेत्र रहा, परन्तु 1803 में जब यह अंग्रेजों के आधिपत्य में आया तब इसे आगरा जनपद की एक तहसील बना दिया गया। 180 वर्ष तक यही स्थिति रही, परन्तु 1976 से ही फीरोजाबाद के निवासियों के शान्तिपूर्ण और अथक आन्दोलन के फलस्वरूप 5 फरवरी 1989 को यह जनपद बना और तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री नारायण दत्त तिवारी जी ने विधिवत उद्घाटन कर इसे जनपद घोषित किया। यह राष्ट्रीय राजमार्ग-2 पर आगरा से 40 कि.मी. दूर कानपुर की दिशा में स्थित है। प्राक्स्वातन्त्र्य काल में जब यह आगरा जनपद की मात्र एक तहसील भर था तब भी यहाँ के स्वतन्त्रता संघर्ष का इतिहास अत्यन्त भास्वर रहा। भारत माता को परकीय सत्ता से मुक्ति दिलाने के प्रयास त्रिआयामी रहे।

(1) क्रान्तिकारी आन्दोलन :- इस दिशा के क्रान्तिधर्मियों का मानना था कि अधिक से अधिक अंग्रेजों तथा उनके पिट्ठू प्रशासनिक भारतीय अधिकारियों पर हिंसक आक्रमण कर अंग्रेजी प्रशासन को पंगु बनाया जाय। इन क्रान्तिकारियों का विश्वास था कि इससे भयभीत होकर अंग्रेजी सत्ता स्वयं बोरिया बिस्तर समेट कर इंग्लैण्ड चली जायेगी।

(2) अहिंसक आन्दोलन :- इस आन्दोलन के अनुगामी आन्दोलनकर्ता महात्मा गाँधी द्वारा निर्देशित अहिंसा, असहयोग और शान्तिपूर्ण आन्दोलनों से जन-जागरण करके देश को स्वतन्त्र कराना चाहते थे।

(3) उभयमार्गी आन्दोलन :- इस मार्ग के अनुगामी हिंसा और अहिंसा दोनों का अबलंबन लेते थे। जैसे- महात्मा तिलक और सेनापति पांडुरंग महादेव वापट कांग्रेस में रहते हुए भी क्रान्तिकारियों के प्रबल पक्षधर व प्रेरणा के स्रोत थे।

फीरोजाबाद जनपद के स्वतन्त्रता संघर्ष में अपने जीवन और अपनी ऊर्जा को खपाने वाले क्रान्तिधर्मी तीनों मार्गों पर चलने वाले थे। गांधीवाद के कवि सोहन लाल द्विवेदी ने एक 'प्रयाण गीत' (भैरवी - पृष्ठ 119-120) लिखा है --

"फूँको शंख, ध्वजाएँ फहरें
चले कोटि सेना, घन घहरें
मचे प्रलय !
बढ़ो अभय !

जय जय जय !
"बलि पर बलि ले चलो निरंतर
हो भारत में आज युगांतर
हे बलमय !
हे बलिमय !
बढ़ो अभय !

फीरोजाबाद के क्रान्तिधर्मी, बलिपथी स्वतन्त्रता सेनानियों का संघर्ष भी इसी ज्वलन्त स्वर का अनुगामी था। उनमें तीनों मार्गों का अनुगमन करने वाले सेनानी रहे।

(1) क्रान्तिकारी

फीरोजाबाद के हुतात्मा : कम्पाउण्डर हरीशंकर शर्मा - भगवतीचरण बोहरा (15 नवम्बर 1903-28 मई 1930) महान क्रान्तिकारी और भारत की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए कृतसंकल्प हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख सिद्धान्तकार व क्रान्तिधर्मी थे। 8 अप्रैल 1929 को क्रान्तिवीर भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने गोरी सरकार के दो काले कानूनों का विरोध करते हुए असेम्बली में बम फेंका और गिरफ्तार हो गए। बाद में सुखदेव और राजगुरु भी गिरफ्तार हुए। इन्हें लाहौर जेल से पुलिस एक साथ अदालत ले जाने वाली थी। चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण बोहरा, दुर्गा भाभी और यशपाल ने उसी दिन इन्हें मुक्त कराने की योजना बनायी। भगवतीचरण बोहरा बम बनाने की कला में निष्णात थे। बम बना लिए गए, परन्तु उपयोग से पहले उनका परीक्षण जरूरी था। दुर्भाग्य से रावी तट के जंगल में परीक्षण से पहले ही बम फट गया और एक क्रान्तिवीर, अपराजित योद्धा और आजादी के स्वप्नद्रष्टा क्रान्तिवीर भगवती चरण बोहरा का दुखद अन्त हो गया।

सुहागनगरी के नाम से विख्यात फीरोजाबाद एक छोटा शहर है। परतन्त्रता के दिनों में तो यह आगरा जिले की तहसील भर था। अब तो इसकी जनसंख्या भी बहुत बढ़ गयी है और यह जनपद भी बन गया है। इस नगर ने भी एक स्वतन्त्रता का दीवाना और क्रान्तिदर्शी हुतात्मा पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त किया है और अपनी भीगी अश्रुपूरित आँखों से भगतवीचरण बोहरा जैसे ही उसके बलिदान को देखा है। यह हुतात्मा वीर था कम्पाउण्डर हरीशंकर शर्मा। अलीगढ़ जिले के सासनी कस्बे में पं. सालिगराम शर्मा की सहधर्मिणी श्रीमती त्रिवेणी देवी की कोख को धन्य करते हुए इस वीर पुरुष ने जन्म लिया था। त्रिवेणी देवी जी का पीहर एटा जिले की तहसील जलेसर के ग्राम वारा में था। पिता की असमय मृत्यु के कारण माता बालक हरीशंकर को शिक्षित कराने के उद्देश्य से फीरोजाबाद के निकट स्थित ग्राम हुमायूँपुर में अपने रिश्तेदार पं. पूरनमल के घर लेकर आ गयीं। हरीशंकर उस काल के शिक्षा के लिए परम प्रसिद्ध एस.आर.सी.वी. हाई स्कूल (जो अब एस. आर. के. इण्टर कालेज, एस. आर. के. स्नातकोत्तर महाविद्यालय तथा स्ववित्तपोषित एस. आर. के. कम्प्यूटर साइंस एण्ड एजूकेशन जैसी तीन सम्मान्य शिक्षण संस्थाओं में बदल चुका है) में प्रविष्ट करा दिए गए। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण इनकी शिक्षा आठवीं तक ही हो सकी और जल्दी ही शर्बती देवी से इनका पाणिग्रहण भी सम्पन्न करा दिया गया। अब परिवार के भरण-पोषण के निमित्त हरीशंकर शर्मा नगर के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. प्यारेलाल गहलोत के कम्पाउण्डर बन गए और अटावाला मुहल्ला में डॉ. साहब के क्लीनिक के पास ही मकान किराये पर लेकर रहने लगे। उन्नत ललाट, चौड़ी और लम्बी नाक, बड़े-बड़े कान, छोटी पर तेजयुक्त आँखें, इकहरा व छरहरा बदन और स्वभावतः कम बोलने वाला ऐसा था व्यक्तित्व प. हरीशंकर शर्मा का। 1930 का समय था। सम्पूर्ण देश महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में सहभागी हो रहा था। जेलें भरी जा रही थीं। विद्यार्थी विद्यालय और सरकारी नौकर अपनी नौकरियाँ छोड़कर आन्दोलन में सहभागिता कर रहे थे। उधर ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र चल रहा था। तभी फीरोजाबाद में एक नया हाकिम परगना (एस.डी.एम.) बाबूराम यादव आया। वह अत्यन्त क्रूर था। उसने आतंक फैलाने के लिए सत्याग्रहियों पर भयानक अत्याचार करना प्रारम्भ कर

दिया। इस दमनचक्र ने फीरोजाबाद के युवावर्ग को आन्दोलित और उत्तेजित कर दिया। फलस्वरूप युवकों की गुप्त सभा जुटी और बाबूराम यादव को यमलोक भेजने का निर्णय हो गया। हरीशंकर शर्मा ने एक बोतल में बम बनाया। उन्हें पता लग गया था कि दुर्दान्त, क्रूर, अत्याचारी बाबूराम यादव फीरोजाबाद से आगरा आ रहा है। उसे मार्ग में ही यमलोक भेजने का निश्चय कर वे अपने एक साथी रमानिधि चतुर्वेदी के साथ बम को कमीज के भीतर छिपाकर चल पड़े। सेण्ट्रल टाकीज चौराहे के आस-पास की जमीन उन दिनों खाली थी। वहाँ एक-दो कारखाने और एक बगीचा ही था। वहीं भारतमाता के दुर्भाग्य ने एक और विकट खेल रच दिया। बम उसी स्थान पर फट गया। दोनों बुरी तरह घायल हो गए। संयोग से वहाँ आए राधारमण जी तुरन्त दोनों घायलों को लेकर उपचारार्थ आगरा भागे परन्तु एत्मादपुर के पास क्रान्तिद्रष्टा कम्पाउण्डर हरीशंकर शर्मा ने दम तोड़ दिया।

नियति ने फीरोजाबाद के इस दूसरे भगवतीचरण बोहरा का बलिदान तो लिया ही उस हुतात्मा की कीर्तिगाथा भी अन्तरिक्ष में लुप्त हो गयी। आज फीरोजाबाद में कम्पाउण्डर हरीशंकर शर्मा का नाम जानने वाले गिने-चुने लोग रह गए हैं।

(2) उभयमार्गी

फीरोजाबाद के तिलक : रामचन्द्र पालीवाल - फीरोजाबाद के स्वतन्त्रता आन्दोलन के ज्योतिर्मय स्तम्भों में एक नाम रामचन्द्र पालीवाल का भी है। पालीवाल जी यद्यपि काँग्रेसी थे, परन्तु वे क्रान्तिकारियों के भी उतने ही प्रबल समर्थक थे। वस्तुतः वे फीरोजाबाद के बाल गंगाधर तिलक थे। गोरी सरकार द्वारा पालीवाल जी को जिन्दा या मुर्दा पकड़वाने के लिए 10 हजार रुपये का नकद इनाम घोषित किया गया था, परन्तु गोरी पुलिस इस क्रान्तिकारी को पकड़ने में पूरी तरह असफल रही। एक बार ये किसी घर में थे। भोजन आदि करके निश्चिंत ही हुए थे कि पुलिस आ गयी। उसी समय मेहतरानी शौचालय साफ करने आयी। पालीवाल जी ने मेहतरानी के कपड़े पहने, हाथ में कूड़े वाली टोकरी ली और पुलिस के सामने से ही निकल गए। पुलिस तकती रह गयी। पक्षी उनकी आँखों के सामने से उड़ गया था। नगर में एक मन्नू ताँगेवाला था। पुलिस ने मन्नू को बुलाया। उसे दस हजार रुपये का लालच दिया। समझाया। डराया, धमकाया भी, परन्तु वह पालीवाल जी से विश्वासघात करने को तैयार नहीं हुआ। पालीवाल जी गाँधी जी की अहिंसा के पूर्ण विश्वासी थे परन्तु 1942 में उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में क्रान्ति का सफल संचालन किया। वे सशस्त्र क्रान्ति के भी संचालक व समर्थक थे। वे दाढ़ी-मूछें रखकर गेरूये कपड़ों में हिन्दू साधु या हरे कपड़ों में मुस्लिम साधु बनकर पीठ पर पेटी या झोले में बम लादकर चलते थे। एक रात्रि को वह आगरा के शम्भूनाथ चतुर्वेदी के साथ-साथ घनश्याम चतुर्वेदी उर्फ सुनू लम्बरदार के घर रुके हुए थे और रात्रि में ही मन्नू के ताँगे में बैठकर निकल गए। पुलिस इनके जाने के बाद पहुँची पर उसके वांछित पक्षी उड़ चुका था। हताश और झुँझलायी पुलिस ने सुनू लम्बरदार को ही गिरफ्तार कर लिया और जेल भेज दिया। पालीवाल जी के हाथ न आने से थकी-हारी झुँझलायी पुलिस ने उनके छोटे भाई जीवाराम को ही गिरफ्तार कर लिया। उन्हें बाबू जयप्रकाश नारायण के साथ जेल में रखा और भयानक यातनाएँ दीं।

एक बार पालीवाल जी दिल्ली से बमों के खोल बनवाकर आ रहे थे। वे अपने जामाता के घर पहुँचे। बमों के खोलों की पेटी वहीं रखकर चले गए। इसी बीच पुलिस ने उनके घर पर छापा मारा और बमों की पेटी अपने अधिकार में कर ली। दामाद को भी गिरफ्तार कर लिया परन्तु उस पेटी में कोई जीवित बम तो था नहीं अतः दामाद जी को छोड़ना पड़ा। बाद में रामचन्द्र पालीवाल जी को काकोर जिला बुलन्दशहर से पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और कुछ दिनों बाद वे आगरा के सेण्ट्रल जेल भेज दिए गए। आगरा सेण्ट्रल जेल में बन्द स्वतन्त्रता सेनानी पं. जगन्नाथ लहरी ने ही उन्हें सर्वप्रथम पहचाना और उनके चरण स्पर्श किए।

आज नगर के प्रमुख समाजसेवी तथा शिक्षाशास्त्री रामनिवास गुप्त जी के प्रयास से नगर निगम परिसर में एक सार्वजनिक हॉल 'रामचन्द्र पालीवाल हॉल' बन गया है। यह वातानुकूलित है और सार्वजनिक आयोजनों के लिए सर्वोत्तम स्थान है। परन्तु आजादी मिलने के बाद पालीवाल जी ने स्वतन्त्रता सेनानियों को मिलने वाली कोई सुविधा नहीं ली। उन्होंने जीवनयापन के लिए लकड़ी की टाल खोल ली। मेरे पूज्य पिताश्री स्व. पं. गया प्रसाद शर्मा सबसे कम आयु में स्वतन्त्रता-संघर्ष में जेल गए थे। इसलिए ब्रज के सारे सेनानी उन्हें प्यार से 'लला' का आत्मीय संबोधन देते थे। पालीवाल जी उनसे कहा करते थे, "लला ! इन अंग्रेजों से मुक्ति का प्रयास कितने लम्बे समय से चल रहा था। 1857 में कितने भारतीय शहीद हुए। कितनों को जेल की यातनाएँ भोगनी पड़ीं। तब से संघर्ष लगातार चलता रहा, कभी बन्द नहीं हुआ। हमें तो भरोसा ही नहीं था कि हमारे जीवनकाल में देश आजाद हो जाएगा। हमने देश को आजाद देख लिया हमारा लक्ष्य हमें मिल गया। हमसे अधिक सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है।"

उन्होंने प. मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित 'सेवा समिति' की शाखा फीरोजाबाद में स्थापित की। जो आनन्द उन्हें स्वतन्त्रता-संघर्ष में लड़ते हुए मिला उससे अधिक दुख उन्हें एम.एल.ए. बनकर मिला। उन्होंने कांग्रेस के आदेश पर 1937 और 1946 में चुनाव लड़ा। उनके मुकाबले कोटला के राजा कुशलपाल सिंह खड़े थे परन्तु पालीवाल जी भारी मतों से जीते। लेकिन एम.एल.ए. बनकर जब उन्होंने नेताओं तथा जनता का नैतिक पतन देखा तो व्यथित होकर उन्होंने कांग्रेस की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया। 8 फरवरी सन् 1962 को वे ज्वलन्त सेनानी अनन्त में विलीन हो गये।

घिग्घी बँध गयी प्रशासन की – 1920 से 1940 के मध्य स्वतन्त्रता की आग हर भारतीय के हृदय में जल रही थी। क्रान्तिकारी युवा हिंसा के मार्ग से देश को पूर्ण स्वतन्त्र कराना चाहते थे, उधर काँग्रेस का मार्ग अहिंसा, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह का था। होते-होते 1942 आ गया। अंग्रेज सरकार का दमन-चक्र पूरी क्रूरता से चल रहा था। गाँधी जी ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया। अधिकांश बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गए। गाँधी जी ने देश की जुझारू जनता को सन्देश दिया 'करो या मरो'। फीरोजाबाद के पास के ग्राम रूपसपुर के तेजस्वी नेता भूपसिंह शर्मा और गुँदाऊ के चौधरी गंधर्व सिंह तथा वहाँ के युवकों ने मिलकर योजना बनाकर हिरनगाँव स्टेशन लूट लिया। इस लूटे हुए धन में पाँच सौ से कुछ अधिक रुपये मिले। एक पैसे का भी दुरुपयोग नहीं हुआ। बाद में इससे कुर्री कुपा नामक ग्राम में प्राइमरी स्कूल बनवा दिया गया। स्टेशन जला दिया गया था। यह काण्ड 17 अगस्त को सम्पन्न किया गया। फिर अगले ही दिन 18 अगस्त को गुँदाऊ की सार्वजनिक शाला पर इन उत्साही स्वातन्त्र्य वीरों की जनसभा जुड़ी। मंच पर चौधरी गंधर्वसिंह, भूपसिंह शर्मा, तिलोकपुर निवासी युवा नेता पं. गयाप्रसाद शर्मा आदि उपस्थित थे। लोगों के हृदय में उत्साह का सागर हिलोरें ले रहा था। आस-पास के गाँवों से हजारों की संख्या में जनता जुट गयी। एक दिन पहले लूटे गए स्टेशन और अब इस सभा की सूचना पुलिस तक पहुँच गयी थी।

फीरोजाबाद का कोतवाल इमदाद खाँ और तहसीलदार मेंहदी हसन 50 राइफलधारी सिपाहियों और अंग्रेजी सरकार के पिट्ठू 35 लाइसेंसधारी बन्दूकवालों के साथ नेताओं को गिरफ्तार करने पहुँच गये। नेताओं को गिरफ्तार करने का प्रयास किया गया परन्तु यह समाचार आनन-फानन में आस-पास के ग्रामों तक फैल गया। आजादी के लिए उद्वेलित जनता में उत्तेजना फैल गयी और जिसके घर में जो मिला लाठी, भाला, कुल्हाड़ी, फरसा, हँसिया, दराँती, बल्लम लेकर सभास्थल पहुँच गए और पुलिस दल को चारों ओर से घेर लिया। अनेक लोगों पर बिना लाइसेंस की देशी बन्दूकें आदि भी थीं। जनता का उग्र रूप देखकर थानेदार, तहसीलदार और सिपाहियों की घिग्घी बँध गयी। जनसमूह में ज्वार आया हुआ था और लोग माँग कर रहे थे कि पूरी पुलिस पार्टी को टुकड़े-टुकड़े करके

यमुना में बहा दिया जाए। सभा-मंच पर उपस्थित नेताओं ने ही जनता से अपील की, 'भाइयो! हमारा मार्ग अहिंसा का है। ये लोग मजबूर सरकारी गुलाम हैं। इनसे गाँधी जी और भारतमाता की जय बुलवाकर इन्हें जीवित जाने दिया जाय। ये तो बस अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। इसका प्रभाव हुआ और उत्तेजित जनता शान्त हो गयी। पुलिस टीम ने महात्मा गाँधी और भारत माता की जय के नारे लगाये तभी वे जीवित वापिस जा सके। तहसीलदार ने आगरा के जिलाधिकारी को सूचना दी, जिलाधिकारी ने 'गवर्नर जनरल' को तार कर दिया कि "फीरोजाबाद तहसील का गाँव गुँदाऊ विद्रोही हो गया है।" फलस्वरूप अगले दिन हैदराबाद रेजीमेण्ट के जवानों की एक कम्पनी स्पेशल ट्रेन से आयी और सवेरे ही सवेरे रूपसपुर से भूपसिंह शर्मा, फतेह सिंह शर्मा, ठाकुर प्रसाद शर्मा और वासुदेव शर्मा, गुँदाऊ से चौधरी गंधर्व सिंह यादव, पोखपाल, पातीराम, एवरन सिंह आदि 18 लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। दो महीने 21 दिन आगरा जेल में इन सबको अण्डर ट्रायल रखा गया। बाद में भूपसिंह शर्मा तथा गंधर्व सिंह को छोड़कर शेष मुक्त कर दिए गए। इस संघर्षशील टोली में एक नाम हमेशा छूट जाता है, वह है जोम सिंह बाल्मीकि। यह लम्बा-चौड़ा छः फुटा जवान हरिजन सदा-सर्वदा भूपसिंह शर्मा का अंगरक्षक बनकर रहा परन्तु आजादी के बाद इसे स्वतन्त्रता सेनानी की कोई सुविधा नहीं मिल सकी।

(3) अहिंसावादी क्रान्तिकारी

बलिदानी युवक : मेवाराम - ब्रिटिश भारत के आगरा जनपद की फीरोजाबाद तहसील का एक कस्बा है कोटला। कोटला की रियासत ठाकुर कुशल पाल सिंह के पास थी। पास में ही एक छोटा सा गाँव है राजपुर। इस राजपुर गाँव को अभूतपूर्व त्याग, बलिदान और उच्चतम आदर्शों को जीने वालों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। गाँव का एक कढ़ेरे परिवार था (ब्रज में कढ़ेरे धुनहा जाति को कहते हैं)। ये लोग सर्दी में रूई धुनने तथा उसे रजाइयों में भरने का काम करते हैं। परिवार में दो भाई थे साक्षात राम और लक्ष्मण का प्रतिरूप। अग्रज तुलाराम अंग्रेज सरकार के चौकीदार थे और अनुज मेवाराम उर्फ ओमप्रकाश स्वतन्त्रता सेनानी। भला अंग्रेज सरकार यह कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि उनके हुक्म के गुलाम चौकीदार का अनुज उनके ही विरुद्ध खड़ा होकर उनसे आजादी की माँग करे। फलस्वरूप तुलाराम को तहसीलदार ने सरकारी हुक्मनामा सुना दिया- "या तो अपने विद्रोही भाई को गिरफ्तार करवाओ या चौकीदारी छोड़ो।" चौकीदारी से मिलने वाली तनख्वाह परिवार की आय का छोटा सा साधन थी। इसलिए तुलाराम ने तहसीलदार से एक दिन का समय माँग लिया। घर आकर उन्होंने अनुज मेवाराम को अपनी समस्या बतायी और पूछा, "बता भाई! अब क्या करूँ?"

मेवाराम ने उत्तर दिया, "भैया! बड़े भाई के आदेश का पालन करना मेरा धर्म है, परन्तु भारत माता हम सबकी माता है। हम उसके लिए लड़ रहे हैं अतः मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ क्योंकि मैं आपके आदेश का पालन नहीं कर सकता।" तुलाराम ने चौकीदारी की चिन्ता नहीं की। उन्होंने कहा, "मेवा! मैंने सोच लिया है, मैं कल चौकीदारी से इस्तीफा दे दूँगा।" ऐसा ही हुआ। अगले दिन तुलाराम थाने गए और चौकीदारी से इस्तीफा दे आए।

मेवाराम प्रचण्ड साहस और गर्म खून वाले तेजस्वी युवा नेता थे। फीरोजाबाद के नारखी क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर जरानी नामक गाँव है। इस गाँव का जमींदार अत्यन्त क्रूर, निर्मम, अहंकारी और अत्याचारी था। वह कांग्रेस का घोर विरोधी था। जमींदार का नाम दलजीत सिंह था। इसी बीच ओखरा में कांग्रेस की एक बड़ी सभा हुई जिसमें आगरा के ओजस्वी नेता श्रीकृष्णदत्त पालीवाल और फीरोजाबाद के क्रान्तिकारी नेता रामचन्द्र पालीवाल के ओजस्वी भाषण हुए। इस सभा का एलान घण्टा बजाकर सेनानी मुंशीलाल गोस्वामी ने किया। जरानी में घण्टा बजाते

ही जमींदार ने उन्हें अपने सिपाहियों से पकड़वाकर लाठियों से पिटवाया और मरणासन्न अवस्था में रास्ते पर फिंकवा दिया। अगले दिन हजारों कांग्रेसी कार्यकर्ता विरोध करने पहुँचे। तय हुआ एक दिन एक गाँव के कार्यकर्ता ठाकुर के दरवाजे पर 'टोड़ी बच्चा हाय हाय' के नारे लगाएँगे। ठाकुर की अर्थी बनाकर उसे जूते मारते हुए घण्टों तक 'टोड़ी बच्चा हाय हाय' करते हुए उस अर्थी को किसी अन्धे कुँए में डाल दिया जाएगा।

अत्याचारी ठाकुर की अर्थी निकालकर उसे औकात दिखाने का काम राजपुर के इसी सपूत मेवाराम और उसके साथियों ने किया था।

कुछ दिन बाद ही मेवाराम की शादी फूलमती देवी से हो गयी। वर-वधू का कंगन खुलने की रस्म अभी पूरी भी नहीं हुई थी (इस रस्म के बाद नवयुगल आपस में मिल सकते हैं)। 1932 का समय था, तभी देश ने मेवाराम को पुकार लिया और हाथ पर कँगन बाँधे-बाँधे ही मेवाराम सत्याग्रह के लिए जाने लगे नवबधू ने लज्जा-संकोच त्यागा और सामने आकर पति से पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?"

मेवाराम ने उत्तर दिया, "भारतमाता ने पुकारा है। उसे आजादी दिलानी है। गोरी सरकार को देश छोड़ने के लिए मजबूर करना है इसलिए सत्याग्रह करने जा रहा हूँ।"

फूलमती ने कहा, "फिर मुझे छोड़कर क्यों? सात फेरे लेकर साथ आयी हूँ। सात जन्म तक साथ रहूँगी। जहाँ आप वहाँ मैं।"

मेवाराम ने और गाँव के तमाम बड़ों ने भी समझाया और बताया कि सरकार जेल में डाल देगी, वहाँ बड़ी यातनायें देगी, परन्तु फूलमती टस से मस नहीं हुई। फलस्वरूप हाथ में कंगन बाँधे ही बाँधे आजादी के दीवाने पति-पत्नी का यह जोड़ा आगरा चल पड़ा। सत्याग्रह में सम्मिलित हुए परन्तु मेवाराम के उग्र स्वभाव को देखकर उन्हें लखीमपुर खीरी जेल में तथा फूलमती को फतेहगढ़ जेल में डाल दिया। मेवाराम जेल में भी तसले पर कैदियों के बीच क्रान्तिकारी गीत गाया करते थे। अत्याचार होने पर पीली ड्रेस वाले पुराने कैदियों या सिपाही पर हाथ भी छोड़ देते थे। उनको गोरी सरकार ने भयंकर यातनाएँ दीं फलस्वरूप 15 मई 1933 को जेल में ही वे शहीद हो गए। फूलमती देवी कुछ समय बाद मुक्त हो गयीं परन्तु पति के जाने के बाद भी सत्याग्रह में सहभागी होती रहीं। उन्होंने लम्बा जीवन पाया परन्तु आजीवन अपनी ससुराल में मेवाराम की विधवा बनकर ही रहीं।

साहसी लोकगायक और स्वतन्त्रता सेनानी पं. गयाप्रसाद शर्मा - स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गांधी का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने हर गाँव, हर गली और हर घर में एक मिनी गांधी उत्पन्न कर दिया था और उसके हाथ में अहिंसात्मक प्रतिरोध, निर्भीकता और सत्याग्रह के दिव्यास्त्र थमा दिये थे। उन्होंने स्वतन्त्रता की चेतना को जन-जन तक पहुँचा दिया था। इस दृष्टि से उन्होंने साधारण से साधारण भारतीय को भी असाधारण बना दिया था। इसीलिए तो तत्कालीन आगरा जिले की तहसील फीरोजाबाद (अब 1986 से फीरोजाबाद स्वतन्त्र जनपद बन चुका है) के छोटे से ग्राम तिलोकपुर में जन्मे कृषक-पुत्र गया प्रसाद भी स्वतन्त्रता संग्राम के जीवन्त योद्धा बन गये। पंजाब के बिलासपुर जिले के किसी ग्राम से उत्तर प्रदेश में प्रवासी हुए एक ब्राह्मण परिवार ने कभी अतीत में तिलोकपुर ग्राम में अपना निवास बनाया था। उसी ग्राम के प. भोला प्रसाद के घर 1918 में पं. गया प्रसाद का जन्म हुआ। कृषक परिवार में जन्मे होने के बावजूद उनमें संगीत और गायन की प्रतिभा जन्मजात थी। उनकी स्मरण शक्ति गजब की थी। वे बहुत छोटी आयु में ही स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े थे इसके पीछे भी एक विलक्षण कहानी है। सम्भवतः 1934 की बात रही होगी। पास के गाँव पचवान में कांग्रेस के बड़े नेता आने वाले थे। जनता में अपने नेताओं को सुनने के लिए बड़ा जोश था। कई गाँव की जनता उमड़ पड़ी थी। भीड़ बहुत थी परन्तु नेताओं के

आने में अभी देर हो रही थी। भीड़ को तब तक कैसे रोके रखा जाय, आयोजकों के सामने यह विकट समस्या थी। तभी किसी तिलोकपुरवासी ने किशोर पं. गयाप्रसाद का नाम सुझा दिया। पं. गया प्रसाद ने उस समय के आर्यसमाजी भजन गायक तेजसिंह और पातीराम के राष्ट्रीय भजन मधुर स्वर में सुनाना प्रारम्भ कर दिया। एक के बाद एक करके उन्होंने 4 भजन अपने मधुर कण्ठ से गाए और जनता पर जैसे सम्मोहन हो गया। तब तक नेतागण आ गये। श्री कृष्णदत्त पालीवाल और भोगीलाल मिश्र आगरा से तथा रामचन्द्र पालीवाल फीरोजाबाद से आए थे। सबने किशोर गयाप्रसाद को सराहा और इस तरह वे स्वतन्त्रता संग्राम में दीक्षित हो गये।

इसके पश्चात पं. गयाप्रसाद ने गाँव-गाँव घूमकर अपने भजनों से जनजागरण प्रारम्भ कर दिया। बैलगाड़ी में हारमोनियम और ढोलक रखकर दो लोग बैठ जाते। झोले में तिरंगा रहता। किसी भी गाँव में किसी चौपाल पर, किसी स्कूल में या किसी मैदान में अड्डा जम जाता, तिरंगा फहरा दिया जाता और भजन के माध्यम से अंग्रेजों को भगाने, भारतमाता की वन्दना और अपने समाज में व्याप्त रुढ़ियों और अंधविश्वासों को समाप्त करने के लिए जनजागरण के सन्देश गूंजने लगते। स्वर मधुर था ही, सो जनता सम्मोहित होकर सुनती और प्रभावित होती थी। 1940 में उन्हें एक जगह उत्तेजक भाषण देने के कारण जेल जाना पड़ा। उनकी पढ़ाई-लिखाई वहीं जेल में हुई। वे सबसे छोटी आयु के जेल यात्री थे इसलिए ब्रजप्रदेश के सारे स्वतन्त्रता सेनानी उन्हें 'लला' के आत्मीय सम्बोधन से पुकारते थे। 1942 के 'करो या मरो' और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन में उन्हें आगरा कमिश्नरी का डिक्टेटर बनाकर सत्याग्रहियों के जत्थे तैयार करने और क्रान्ति को सर्वव्यापी बनाने का काम सौंपा गया, क्योंकि अधिकांश बड़े नेता जेल जा चुके थे।

1942 की क्रान्ति का संचालन उन्होंने बड़ी कुशलता से किया। परन्तु सी.आई.डी. उनके पीछे लगी थी सो वे एक दिन गिरफ्तार कर लिए गए और पहले आगरा की जेल में रखे गए और तीन महीने बाद गोंडा की जेल भेज दिए गए जहाँ से आठ महीने बाद वे रिहा हुए। जेल में उनकी भेंट प्रसिद्ध ढोला गायक टीकाराम पुजारी से हुई। टीकाराम पुजारी के निर्देश पर उन्होंने भजन छोड़कर ढोला गायन प्रारम्भ कर दिया। पहले उन्होंने ढोला गायन मही ग्राम (जिला हाथरस पूर्व में मथुरा) के ढोला गायक श्री शेरसिंह से सीखा था। स्वतन्त्रता के बाद भी वे ढोला गायन के माध्यम से स्वदेशी अन्धविश्वास-उन्मूलन और राष्ट्रभक्ति का प्रचार-प्रसार करते रहे।

पं. जी ने लम्बी आयु पायी। बाद में वे तिलोकपुर छोड़कर फीरोजाबाद नगर के तिलक नगर मोहल्ले में निजी मकान बनवाकर रहने लगे थे। उनके दोनों पुत्र डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' तथा डॉ. श्यामसनेही लाल शर्मा उच्च शिक्षित और स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में प्राध्यापक रहे। उनकी एकमात्र बेटी वीरेश शर्मा भी उच्चशिक्षिता हैं। पं. जी का जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा, परन्तु वे सदा कहते थे, "स्वतन्त्रता के प्रयास 1857 के पूर्व से ही चल रहे थे। यह हमारा सौभाग्य है कि हमने अपने जीवनकाल में देश को स्वतन्त्र देख लिया। हमारे संघर्ष का प्रतिदान हमें मिल गया।"

सहायक स्रोत

1. स्वातन्त्र्य योद्धाओं से सुने वृतान्तों से स्मृति-लब्ध-गाथायें। **2.** फीरोजाबाद जनपद : नई दिशाएँ - संपादक - पन्नालाल जैन 'सरल' एवं श्री राजपति दुबे 'बालेन्दु'-फीरोजाबाद केसरी-1993। **3.** भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष में फीरोजाबाद का योगदान-जगन्नाथ 'लहरी' फीरोजाबाद केसरी प्रेस-1981। **4.** फीरोजाबाद - परिचय गणेशी लाल शर्मा 'प्राणेश'-फीरोजाबाद परिचय प्रकाशन समिति- शारदा सदन, हनुमान गंज, फीरोजाबाद (आगरा)। **5.** ब्रज के स्वतन्त्रता सेनानी - तोताराम 'पंकज'- अभिव्यक्ति दिल्ली 1991।

86, तिलक नगर
बाई पास रोड, फीरोजाबाद-283203
मो. 9917796897
वाट्स अप-9412316779

●

भारतीय संस्कृति में वैविध्य एवं ऐक्यः एक समन्वयात्मक विश्लेषण

डॉ. राहुल कुमार मौर्य

सारांशिका - किसी भी संस्कृति को उसकी इकाइयों में बांटकर अध्ययन करना तथा पुनः उन इकाइयों को जोड़कर एक साथ समग्रता में देखना उसका सम्पूर्ण अनुशीलन कहा जा सकता है। इस प्रकार के प्रयास से किसी भी संस्कृति की विविधता में एकता एवं एकता में विविधता दोनों ही तत्वों का निदर्शन हो जाता है। भारतीय संस्कृति का वैविध्य एवं ऐक्य भी स्वय में सुविख्यात है। प्रस्तुत आलेख में हम यह देखने का प्रयास करेंगे की कैसे भारतीय संस्कृति में विविधता व्याप्त है जो इसे व्यापक एवं सुन्दर बनाती है तथा उन वैविध्यों के बीच कैसे हम एकता के सूत्र को प्राप्त कर सकते हैं जो भारतीय राष्ट्र के संपूर्ण सांस्कृतिक ज्ञान का समन्वय प्रस्तुत करता है। **कुञ्जी पद :** सांस्कृतिक विविधता, सांस्कृतिक एकता, समग्र अध्ययन, समन्वयात्मक विश्लेषण, सामासिक संस्कृति।

1. प्रस्तावना - भारतवर्ष की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक एवं सतत प्रवाहमान संस्कृति रही है। इसकी व्यापकता के अनुशीलन हेतु यह आवश्यक है कि सर्व प्रथम हम इसके विभिन्न एककों में इसे विश्लेषित कर लें, तत्पश्चात उनका पृथक-पृथक अध्ययन करके पुनः सभी पक्षों को एक साथ समग्रता में निदर्शन करके उन सबका एक सामासिक स्वरूप प्राप्त करें। यही भारतीय संस्कृति कि वैविध्य के साथ-साथ एकता के भाव का प्रस्तुतीकरण भी होगा जिसे सांस्कृतिक एकात्मकता भी कह सकते हैं।

भारत भौगोलिक सीमा से बंधा एक राष्ट्र मात्र नहीं है, अपितु यह एक सांस्कृतिक राष्ट्र भी है जिसके असंख्य घटकों या एककों के द्वारा इसकी सदियों से रचना हुई है। इसकी संस्कृतियों के ज्ञान के लिए यह भी आवश्यक है कि हम 'भारत' का भी ज्ञान प्राप्त करें। भारत-अध्ययन (इंडिक स्टडीज) कहीं प्राच्यवादी अध्ययनों से सर्वथा भिन्न है। भारत के साभ्यतिक विमर्श के लिए भारत-अध्ययन एवं भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्र का अध्ययन अपरिहार्य बन जाता है। ऐसे में इसके सांस्कृतिक तत्त्वों के विवेचन के लिए संस्कृतियों से सम्बद्ध बहुत से सूक्ष्म तत्त्वों का अनुशीलन अनिवार्य है जो इसके निर्माणक भी है।

भारतीय संस्कृति के अध्येताओं के बीच एक अहम प्रश्न यह है कि क्या भारतीय संस्कृति बहुलवादी है?[1] कुछ का कहना है कि यह एकात्मक या सामासिक है। सच तो यह है कि यहाँ भारतीय संस्कृति के व्यापक स्वरूप को देखते हुए उसके बहुलवादी स्वरूप का अस्तित्व

बोध स्वीकारता एवं सहभाव या सहअस्तित्व के सहारे एक-साथ उन सब में एकता का निदर्शन करना दो दृष्टियां हैं जो किसी संस्कृति को समग्रता में जानने का एक सफलतम प्रयास है, प्रविधि है। प्रस्तुत आलेख इस बात पर विशेष बल देता है कि भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में किसी भी एक विचार को स्वीकार लेना इसे एकांगिक बनाने जैसा हो जाएगा। अस्तु, भारतीय संस्कृति बहुलवादी होने के साथ-साथ एकात्मक भी है। ये दोनों दृष्टिकोणों के द्वारा भारत एवं भारत कि समस्त सांस्कृतिक उपादानों को एक सूत्र में पिरोकर देखने का प्रयास ही इसके सामासिकता का एवं एतद्वारा समग्रता में भारतीय संस्कृति का स्वरूप उपस्थापन करना संभव हो सकेगा। इन्हीं प्रयासों के द्वारा भास्तीय संस्कृतियों के बीच उभरती हुई वर्तमान चुनौतियों को देखते हुए इसका सांस्कृतिक समाकलन (सोशल इंटीग्रेशन) भी किया जा सकता है। इसका सविस्तार एवं बिंदुवार अनुशीलन निम्नवत किया जा सकता है।

2. प्रकृति-संस्कृति विमर्श

इस जगत में हमें हमारे जन्म से जो प्रदत्त है, प्राप्त है वह प्रकृति है तथा उस प्राप्त प्रकृति में जो अपरिहार्य परिवर्तन कर उसका संस्कार कर दिया जाये तो वह सुसंस्कृति स्वरूप ही संस्कृति कहलाने लगती है। संस्कृति शब्द का 'संस्कार', परिष्कार, शोधन करने आदि के अर्थ में ही ग्रहण किया गया है। अगर इसके क्रियार्थक शक्ति या लक्षण पर दृष्टिपात करे तो 'संस्कृति' शब्द इन्ही अर्थों को लेकर बनी है। यह अपने व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में संस्कृत भाषा के 'कृ' धातु से 'करने के' अर्थ में व्युत्पन्न मानी जा सकती है। इसका आंग्लभाषीय रूपांतर 'कल्चर' है जो लैटिन भाषा के 'कल्ट' या 'कल्टस' से ग्रहण किया हुआ है जिसका अर्थ होता है जोतना, विकसित करना या परिष्कार या सुधार करना। इस प्रकार इन सभी सन्दर्भों एवं अर्थों के भावों को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है की संस्कृति एक ऐसी सुधारी गयी स्थिति या परिष्कार किया हुआ स्वरूप है जो हमें वस्तुतः प्रकृति के रूप में या जो स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुआ है।

शास्त्रों से लेकर विद्वानों तक ने संस्कृति को परिभाषित करने तथा इसके वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में एवं इसके घटक-तत्वों के सम्बन्ध में एक गंभीर अध्ययन-क्षेत्र का विकास किया है। किसी विशेष भूगोल के अंतर्गत रहने वाली विभिन्न जातियां, उनके रहन-सहन, पोशाक-पहनावा, धर्म-प्रथा, मान्यताएं, पर्व-त्योहार, जीवन-शैली, भाषा, क्रीड़ा, आर्थिक-सामाजिक एवं सम्पूर्णता में कहें तो पूरी साभ्यतिक विमर्श ही संस्कृति की निर्मिति में सहायक है।

मानव समाज की गतिशील अवधारणा है जो नित्य अपना श्रृंगार कर संस्कार द्वारा संस्कृति को पुष्ट करती है। किसी व्यक्ति, जाति, देश एवं काल के सापेक्ष किसी राष्ट्र की वे सभी बातें जो मानव के मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल एवं अन्य विकसमान घटक तत्त्वों को लेकर अपने परिकार को आयाम देता है, वह संस्कृति बन जाती है।[2]

किसी राष्ट्र की संस्कृति का प्रतिबिम्बन उस राष्ट्र के निवासी विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों के लोगों के द्वारा विभिन्न तौर-तरीकों के द्वारा अनेकानेक रीति-रिवाजो का एक सहअस्तित्व भाव में अनुपालन होता है तो वह पक्ष संस्कृति का निर्माण करने लग जाती है। संस्कृति के प्रमुख रूप से दो पक्ष होते हैं- बाह्य पक्ष एवं आंतरिक पक्ष। संस्कृति के बाह्य पक्ष को ही सभ्यता (सिविलाइज़ेशन) कहा जाता है। सभ्य वे कहलाते हैं जो व्यवहार सम्पन्न हो एवं जिसका आचरण वरेण्य हो। सभ्यता का मूलार्थ भी व्यवहार की साधुता ही है (सभायां माधवः सभ्याः) परन्तु अर्थविस्तार के कारण यह शब्द रहन-सहन, उच्चतर जीवन-शैली एवं सुखमय जीवन के सम्यक साधनों से युक्त जीवन जीने की प्रत्याशा को सम्मिलित कर लिया जाता है। सभ्यता एवं संस्कृति के बीच संबंधों को अगर देखा जाए तो सभ्यता एक शरीर है जबकि संस्कृति उसकी आत्मा है। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति को पृथक-

पृथक करके एक दूसरे को समझा नहीं जा सकता है। शिष्ट-आचरण ही हमें सभ्य बनाता है और हम इन्हीं आचरणों के बल पर एक लंबी परंपरा के पश्चात एक संस्कृति निष्ठ व्यक्ति से राष्ट्र का निर्माण कर पाते हैं। संस्कृति के बाह्य पक्षों में प्रमुखतः तीन तत्वों को जाना जाता है भाषा, रहन-सहन एवं मांगलिक वस्तुएं। संस्कृति के आंतरिक पक्ष में आते हैं- साहित्य-चिंतन, दर्शन, धर्म, विधि एवं नैतिकता का पाठ आदि। यह दोनों पक्ष परस्पर मिलकर कार्य करते हैं तथा एक दूसरे का पोषण एवं संवर्धन करते हैं। संस्कृति के सामान्य स्वरूप के एक संक्षिप्त विमर्श के पश्चात अब भारतीय संस्कृति की विशेषताओं एवं घटकों पर निम्नवत अंकेक्षण प्रस्तुत है।

3. भारतीय संस्कृति का स्वरूप

भारतीय संस्कृति एक सतत प्रवाहमान विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक रही है। भारत की प्राचीनतम भौगोलिक सीमा को देखा जाए तो यहां आर्य एवं द्रविड़ नाम की दो प्राचीनतम नृजातीय लोगों का निवास था। अब यह एक पृथक शोध का विषय बन गया है की कौन मूल है और कौन बाहर से आया है। यहां बाहर से आने वाले नृजातीय समूहों का एक वृहद एवं श्रृंखलाबद्ध इतिहास रहा है। आर्यो ने इस आर्यावर्त कहा एवं अनेक भाषा-साहित्य का विशाल भंडार सृजित किया। इसी प्रकार द्रविड़ों का भी भारत की दक्षिणी सीमा में स्थित विशाल एवं बहुआयामी संस्कृति संपन्न सभ्यता थी जिसका प्रमाण आज पुरातात्विक एवं साहित्य-अध्ययन के पश्चात हमें प्राप्त है। यह दोनों ही मिलकर भारत को एक समृद्ध संस्कृतियों बाले राष्ट्र के रूप में चित्रित करते हैं। भारतीय संस्कृति के इस आर्य नृजातियों के मूल स्थान को लेकर विवाद है।[3] तथापि यदि प्राचीनता की दृष्टि से भारतीय संस्कृति पर विचार किया जाए तो यहां ब्राह्मण एवं ब्राह्मण संस्कृतियों ने ही अपनी नींव रखकर इसे समृद्ध एवं आगे बढ़ाने का कार्य किया है।

श्रमण संस्कृति के अंतर्गत आजीवक, चार्वाक, जैन एवं बौद्ध धर्म की मान्यताओं वाली संस्कृतियां आती हैं। इनकी प्रमुख मान्यता थी कि बिना श्रम के कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र उन्नत, शिष्ट एवं सुखी नहीं बन सकता अतः इनकी संस्कृति श्रम आधारित थी और आगे चलकर सम्मिलित रूप से श्रमण संस्कृति कहलायी। इनकी यह मान्यता थी कि कर्म बंधनकारी नहीं है बल्कि मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। अत श्रम या कर्म मुक्ति हेतु आवश्यक उपकरण है। इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही जीवनों को बेहतर बनाने के लिए श्रम की महत्ता पर बल देने वाली संस्कृति श्रमण संस्कृति कहलायी। इस संस्कृति के अपने अलग ग्रंथ थे। इनकी वैदिक संस्कृतियों से भिन्नता थी। इन्हें वेदों की प्रमाणिकता में विश्वास नहीं था। जैन, बौद्ध, चार्वाक एवं आजीवक अपने-अपने प्रवर्तक आचार्यों एवं उनके वचनों को अपना साहित्य समझे और उन्हीं को प्रामाणिक माना, जैसे जैनियों ने तीर्थकरों कि बातों वाले विभिन्न जैनसाहित्य को; बौद्धों ने त्रिपिटक साहित्य को; चार्वाक एवं आजीवकों ने प्रकीर्ण सूत्रों की सहायता से अपनी मान्यताओं को स्वीकार करते हैं।

इनके ठीक विपरीत ब्राह्मण संस्कृति के अनुसार मुक्ति कर्म के बजाय ज्ञान से है (ऋते ज्ञानान्मुक्तिः)। ब्राह्मण संस्कृति के अंतर्गत वैदिक, उपनिषदिक काल के साहित्यों के अतिरिक्त गीता, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों में वर्णित संस्कृतियां पुनश्च षडदर्शनों द्वारा पोषित भारतीय संस्कृति आदि का योगदान भी भारत विद्या की निर्माण एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री का उत्पादन करती रही। सूत्र काल में विकसित भारतीय संस्कृति ज्ञान-विज्ञान एवं तर्क की प्रणाली के लिए जानी जाती है। ईसा की पहली शताब्दी के पश्चात एवं मध्य युग के आने तक भारत ने एक अद्भुत आध्यात्मिक ऊंचाई को प्राप्त कर लिया था। आठवीं शताब्दी के अंत में आचार्य शंकर तत्पश्चात आचार्य रामानुज, वल्लभ एवं रामानंद आचार्य ने जिस ज्ञान एवं भक्ति मार्ग के

द्वारा आध्यात्मिक पथ को आलोकित किया वह पूरी दुनिया में हिंदू संस्कृति या सनातन संस्कृति का एक तरह से पुनरुद्धार किया। आचार्य शंकर प्रणीत अद्वैत वेदांत का दर्शन अपने आप में एक ऐसी ज्ञान संस्कृति का उदाहरण है जो भारतीय अध्यात्म एवं तर्क का प्रतिनिधि सिद्धांत बन गया।

भक्ति काल के दौर में एवं उसके बाद तक भारतीय संस्कृति पर विदेशी आक्रांताओं के अपसंस्कृतियों के काले बादल छाए रहे। यहां लंबे समय तक शक, हूण, मंगोल, मुगल एथ अंत में फिरंगियों ने भारतीय संस्कृति को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। यहीं से भारतीय संस्कृति में वर्ण के स्थान पर विभिन्न जातियों का महा विस्फोट हुआ हालांकि वर्णों से वर्णसंकरता एवं विभिन्न उपजातियों का निर्माण तो ईसा से पूर्व बुद्ध कल में ही शुरू हो गई थी परतु मध्ययुग एवं आधुनिक युग के पश्चात इसमें भारी बदलाव आया एवं संस्कृति में सहअस्तित्व का पहली बार स्पष्ट संकट देखने को मिला। यह भारतीय संस्कृति के लिए बहुलतावादी विमर्श को तो खड़ा कर गया लेकिन एकात्मक होने एवं शांतिपूर्ण सहभावन के लिए खतरे उत्पन्न कर गया। अब भारतीय संस्कृति श्रमण एवं ब्राह्मण संस्कृति के रूप में एक दूसरे के लिए प्रतिपूरक ना होकर बहुलवादी स्वरूप में एक दूसरे की प्रतिद्वंद्वी बन गई क्योंकि अब भारत भूमि पर श्रमण-ब्राह्मण के अतिरिक्त यूरोपीय एव अरबी-इस्लामिक संस्कृतियों ने भी अपनी जड़े जमा ली थी। यहां की मिट्टी से जन्मी मूल निवासियों की भारतीय संस्कृतियां ढीली होकर कमजोर पड़ने लगी। आधुनिक विज्ञान के विकास एवं अद्यतन संचार क्रांति के पश्चात भारत की संस्कृति को समझने एवं इसकी चुनौतियों से दो-चार होने के लिए एवं उनका एक सम्यक समाधान ढूंढने के लिए भारतीय संस्कृति की अद्यतन एवं समग्र विशेषताओं को ध्यान में रखकर निम्नवत दो प्रकार से अनुशीलन किया जा सकता है।

3.1 भारतीय संस्कृति का बहुलवादी स्वरूप

प्राचीन भारत की संस्कृतियों में श्रमण-ब्राह्मण संस्कृति में अध्यात्मवाद, आत्मा-ईश्वर, विमर्श, परलोकवाद, पुनर्जन्म, धर्म-कर्म-ज्ञान परिपोषित मुक्तिवाद, भक्तिवाद आदि दर्शनों के विचार बिन्दुओं के अतिरिक्त वर्ण से जाति की ओर प्रस्थान करती संस्कृति नें वर्णाश्रम-धर्म, सोलह संस्कार, पर्व-त्योहारों से भरे वर्ष पर्यंत की जीवन-शैली से युक्त लोककला-चित्रकला-वस्तुकला, मूर्तिकला आदि का अद्भुत विकास करते हुए आधुनिक की अंधी में पाश्चात्यीकरण से युक्त होकर सम्प्रति भारतीय संस्कृति बहुरंगी हो चुकी है। अब इसका पश्चगमन संभव नहीं हो सकता। कारण स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान पोषित समाज एवं मानव अर्थ एवं सुविधाओं का गुलाम बन गया है। ऐसे में त्याग पर आधारित संस्कृतियों की ओर वापसी असंभव प्रतीत होती है। वर्तमान में प्रमुख रूप से भारत में मुख्यतः हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बहाई पंथ, जैन, बौद्ध एवं अन्य धर्मों के अनुयायी निवास करते हैं। भारत में वर्तमान में लगभग 6000 के आसपास जातियां[4] एवं उपजातियां तथा 800 भाषाएं एवं बोलियां हैं। अब यहां समस्या यह है कि क्या इतनी बहुरंगी छटा वाले वर्तमान भारत की संस्कृति को क्या किसी एक रंग या एक ही नाम से अभिहित करना उचित है? बहुलवादी संस्कृति के विपरीत धारा में सोचने से भारतीय संस्कृतियों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की समस्या आ खड़ी होती है।

3.2 भारतीय संस्कृति का एकात्मक स्वरूप

उपर्युक्त सांस्कृतिक वैविध्य को दृष्टिगत रखते हुए भारत की संस्कृति को सामासिक या एकात्मक कहना भी विवाद को आमंत्रित करने जैसा होगा। बहुसंख्यक हिंदू मान्यताओं वाली भारत की सनातनी संस्कृति ही भारत की मुख्य धारा की संस्कृति है और यही भारत भूमि की मूल है, ऐसी भारतीय संस्कृति की एक चिंतनधारा की मान्यता रही है। कतिपय विद्वानों का

मानना है कि इस संस्कृति ने अन्य संस्कृतियों को स्वयं के अंतर्गत समाहित कर लिया है, परंतु कुछ अन्य विद्वानों ने इस तर्क को मानने से इनकार कर दिया है।[5] सनातनियों का कहना है कि जिस प्रकार किसी एक शरीर के कई अंग होते हैं और वह सभी सामंजस्य पूर्ण ढंग से एक आत्मा को आधार बनाकर सहभाव में रहते हैं, वैसे ही भारत एक राष्ट्र है तथा यहां की अनेक संस्कृतियां भिन्न-भिन्न न होकर सामासिक रूप में एक ही हैं (समसनं एकपदी मवन समासः)। अर्थात जिस प्रकार समास में विभक्तियों को छोड़कर विभिन्न पद एक पद बन जाते हैं, उसी प्रकार विभिन्न संस्कृतियां एक साथ एकरस होकर अंततः गंगा की भांति एकात्मक हो जाती है। यहां पंडित दीनदयाल उपाध्याय उल्लिखित[6] सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर विचार करते हुए भारतीय संस्कृति को एकात्मक होने का दावा प्रस्तुत किया जाता रहा है। कुछ अर्थों में यह सटीक भी है, परंतु केवल इसी मान्यता से अग्रसारित भारतीय संस्कृति को एक नए विवाद की ओर ले जाना भी यथोचित नहीं जान पड़ता। यह सांस्कृतिक एकता हेतु एक सूत्र प्रणाली के रूप में समझ विकसित करने के लिए तथा सांस्कृतिक सहभाव के लिए आवश्यक तो है परंतु स्वकीय की पहचान-संकट (आइडेंटिटी क्राइसिस) की दृष्टि से ठीक नहीं है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति अपने घटक स्वरूपों में वैविध्यपूर्ण है। यह एक बहुलतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि इस भारतीय संस्कृति को जिसका हम अनुधावन प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक प्रसूत भू-भाग के सापेक्ष करते आ रहे हैं उस संस्कृति को केवल सामासिक या एकात्मक कहना इस विशाल संस्कृति के बहुरंगी सौंदर्य का अपलाप करना होगा। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि यदि बहुलतावादी राष्ट्र की अनैकरंगी संस्कृतियों के सांस्कृतिक एकत्व के अभाव में उनके बीच सहअस्तित्व या सहभावन की बात किए बिना हम उनके सातत्य की बात नहीं कर सकते।

इस प्रकार हम भारतीय संस्कृति को न तो केवल बहुलवादी संस्कृति का नाम दे सकते हैं और न ही केवल एकात्मक। हाँ. सांस्कृतिक वैविध्य में ऐक्यता एवं ऐक्यता के बीच सांस्कृतिक बहुलता दोनों का दृष्टिकोण सापेक्ष अवधारणाएं एक-दूसरे की संपूरक होकर भारतीय संस्कृति का एक समग्रता से युक्त दृष्टि प्रदान कर सकती है जो भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता एवं एकता में वैविध्य का दर्शन कराने में सक्षम होगी।

संदर्भ

1. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण, 2010। **2.** नवल जी, (सं.). नालंदा विशाल शब्दसागर आदिस बुक डिपो, 1982, पृ. 1388। **3.** गुलाबराय, बाबू, भारतीय संस्कृति, रविंद्र प्रकाशन, ग्वालियर, 1974-75। **4.** घुर्ये. जी. एस कास्ट एंड रेस इन इंडिया, केगन पॉल, लन्दन, 1932। **5.** अग्रवाल, पुरुषोत्तम, संस्कृतिः वर्चस्व और प्रतिरोध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022। **6.** झा, प्रभात, विचारों की दृष्टि में एकात्म मानवतावाद, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 2019।

सहायक आचार्य, दर्शन एवं धर्म विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005
मो. 9868434162

•

पाठक-मंच

सांस्कृतिक पर्व मकर संक्रांति - पोंगल

बहुधर्मी, बहुपर्वी एवं बहुभाषी प्राचीन भारत सचमुच महान देश है। यहाँ विभिन्न पर्वों के होने के कारण उन विभिन्न धर्मानुयायियों द्वारा अपने-अपने त्योहारों का मनाना स्वाभाविक ही है। मकर संक्रांति एक सांस्कृतिक पर्व है। भारत भर में लोग इसे मकर संक्रांति के ही नाम से जानते हैं। तमिलनाडु में पोंगल के नाम से यह पर्व मनाया जाता है। हमारा देश कई प्रकार के शास्त्रों के लिए, जिनमें से ज्योतिष शास्त्र का अपना स्थान है, विश्व प्रसिद्ध है।

'मकर संक्रांति' संबंधी विद्यमान वैज्ञानिक ज्योतिषी तथा सांस्कृतिक मान्यताओं के संबंध में अब हम विचार करेंगे - 'नभोमण्डल' में जिसे अंग्रेजी में Zodiac कहते हैं जिसमें सूर्य, पृथ्वी आदि ग्रहों का विशेष महत्व है। पृथ्वी 360^0 के भीतर 12 राशियों द्वारा विभाजित है। स्थायी नक्षत्रों की पृष्ठभूमि में राशियों के नाम दिये गये हैं। 360^0 को 12 द्वारा विभाजित करने पर 30 आते हैं। इसका तात्पर्य है प्रत्येक राशि के 30 दिन हैं। भूमि स्वयं घूमती है। एक पूरे दिन में वह एक सर्किल पूरा करती है। स्वयं घूमते-घूमते सूर्य की परिक्रमा करने के लिए वह 365.25 दिन लेती है। तदनुसार द्रष्टा को ऐसा लगता है कि भूमि स्थायी रहती है और सूरज बाह्य परिधि में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। कहा जाता है कि सूर्य 365.25 दिनों की कालावधि में 12 संक्रमण करता है। नभोमण्डल की राशियों के आधार पर सौरमासों के नाम दिये गये हैं। जब मकर राशि पर सूर्य का संक्रमण होता है उसे मकर संक्रमण अथवा मकर संक्रांति कहते हैं।

अब प्रश्न उठता है - संक्रमण क्या होता है? सूर्य एक राशि को पार करके दूसरी राशि के भीतर प्रवेश करने के क्षण का नाम है संक्रमण, इसे संक्राति कहते हैं। जैसे मेष संक्रमण, कटक संक्रमण, तुला संक्रमण, धनुष संक्रमण आदि, इसी प्रकार मकर संक्रमण अथवा मकर संक्रांति। मकर राशि में जब सूर्य संक्रमण करता है वह देवताओं के लिए प्रातःकाल है। मकर मास के प्रथम दिवस को सूर्य भगवान मकर राशि में आकर उत्तरायण होते हैं। वैदिक परम्परानुसार इसे मकर संक्रांति कहते हैं। कुम्भ राशि में जब सूर्य का संक्रमण होता है, तब कुम्भ मेला होता है। यह बारह वर्ष में एक बार होता है। मकर संक्रमण की विशिष्ट

महिमा होती है। मौसम में विशेष प्रकार के परिवर्तन होते हैं। सर्दी से बसंत की ओर ऋतु की गति होती है। ग्रीष्म, वर्षा, सर्दी से बसंत की ओर प्रकृति में होने वाले परिवर्तन का मनुष्य ही नहीं, सभी प्राणी, पशु-पक्षी भी स्वागत करते हैं। इसी मौसम में प्रतिवर्ष तमिलनाडु के 'वेडन्तांगल' में दुनिया भर के पक्षी हजारों की संख्या में आते हैं और मनमोहक प्राकृतिक सौंदर्य में सानंद रहते हैं। सर्दी की वजह से ठिठुरते लोग वसंत की ओर आशामयी दृष्टि रखते हैं। मकर संक्रांति के पश्चात् सर्दी कम होती जाएगी। प्राकृतिक सौंदर्य सबको लुभा लेगा।

हमारे देश में मकर संक्रमण का दिन प्रसन्नता के साथ विभिन्न रूपों में मनाया जाता है। प्रत्येक पर्व भारत में किसी-न-किसी परंपरा, मौसम अथवा संस्कृति के आधार पर मनाया जाता है, तो संस्कृति क्या है? संस्कृति संस्कार जनित है। जो व्यक्ति जिस तरह के संस्कार में पला होता है, उसी के अनुसार उसकी वेश-भूषा, आहार-व्यवहार आदि रहते हैं। संस्कृति देश भर में प्रदेशानुसार बदलती रहती है। तमिल साहित्य के एनसाइक्लोपीडिया 'अमिदान चिंतामणि' के अनुसार मकर संक्रांति का सांस्कृतिक आधार है। मकर मास के प्रथम दिन को सूर्य मकर राशि में आकर उत्तरायण प्रारंभ होने के कारण वैदिक परम्परानुसार इसे 'मकर-संक्रांति-पर्व' कहते हैं। सिर्फ किसान ही नहीं सभी लोग इस पर्व को सानंद मनाते हैं।

तमिलनाडु में मरूद भूमि के लोग 'इंद्र' की पूजा करते थे। तोलकाप्पियम के पाँचवें सूत्र के भाष्य में नच्चिनार्किनियर कहते हैं 'मरुदभूमि के देव के रूप में' - इंद्र देव के नाम पर पर्व मनाने का उल्लेख 'चिलप्पदिकारम' की कई जगहों पर है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि तमिलनाडु के लोग वृष्टि के देव इंद्र की पूजा-आराधना करते थे। भगवान विष्णु के कृष्णावतार में यह 'इंद्रोपासना' समाप्त हो गयी और श्रीकृष्ण की पूजा होने लगी जिससे इंद्र आगबबूले हो गये और जान-बुझकर लोगों, पशु-पक्षियों को सताने के लिए अतिवृष्टि करा दी। परंतु श्रीकृष्ण ने गोवर्धन गिरि को छत्री की भाँति पकड़ कर सबकी रक्षा कर दी। चूँकि श्रीकृष्ण के सामने इंद्र की शक्ति ने जवाब दे दिया और वे विवश हो गये, तो इंद्र ने श्रीकृष्ण से विशेष प्रार्थना की - 'भगवन! लोग मेरी भी पूजा करें।' तबसे यह प्रथा तमिलनाडु में चलने लगी कि 'भोगी' के दिन इंद्र की, मकर संक्रांति अथवा पोंगल के दिन श्रीकृष्ण की, 'माट्टुप्पोंगल' के दिन गाय-बैलों की तथा 'कंरू पोंगल' के दिन बछड़ों की पूजा की जाती है। 'पोंगल' तमिलनाडु भर का प्राचीन पर्व है। इसे किसानों का आनंद भरा उत्सव कह सकते हैं। पोंगल का पहला दिन 'भोगी' पोंगेल (मकर संक्रांति) का दिन अर्थात् 14 या 15 जनवरी, अगला दिन 'माट्टुप्पोंगल' और उसका अगला दिन 'कंरु पोंगल' या 'कन्नि पोंगल' अथवा 'काणुम पोंगल' - इस प्रकार चार दिन बड़ी धूमधाम से कोलाहल और हर्षोल्लास के साथ मकर संक्रांति 'पोंगल' के नाम से तमिलनाडु भर में विधिवत मनायी जा रही है।

कटक मास से धनुर मास तक फसल का वक्त है - कृषि की अवधि है। किसान सूर्य देवता की कृपा से वारिश की सहायता से इस पूरी अवधि में दिन-रात अथक परिश्रम करके फसल काटते हैं और धनुर मास के अंत तक नई फसल को अपने घर लाते हैं। सपरिवार, रिश्तेदारों एवं मित्र-मंडलियों सहित हर्षोल्लास और आनंद को 'पोंगल' त्योहार के रूप में मनाते हैं। हर व्यक्ति, हर परिवार, हर गाँव इस प्रकार पूरा तमिलनाडु परस्पर मिल-जुलकर 'पोंगल' अथवा 'मकर संक्रांति' पर्व को मनाता है। यही इसकी विशेषता है। 'भोगी' धनुर मास का अंतिम दिन है। कटक मास से बहुत परिश्रम करके थके-मादे किसान की थकावट दूर करनेवाला दिन है 'भोगी'। मकर मास का प्रथम दिन और भोगी का अगला दिन 'पोंगल', परिश्रम के फल को भोगने का प्रथम दिन होता है।

पोंगल के दिन परिवार में प्रयुक्त की जानेवाली समस्त वस्तुएँ बिलकुल नई-नई होंगी, नये कपड़े पहनकर, नये-नये घड़े में, नये-नये धान से निकाले गये चावल का भोजन तैयार करते हैं। नये घड़े के ऊपर, नये धागे से, नई हल्दी को रक्षा-बंधन के रूप में बाँधते हैं। अपने घर के सामने जमीन को बिलकुल साफ करके, विविध रंगोंवाली रंगोली बनाकर, विघ्नेश्वर का आह्वान करते हैं। नई हल्दी के पत्तों, नये ईख, नये शक्कर शाक तथा नये पूस को रखकर दिया जलाते हुए सूर्य भगवान की स्तुति करते हैं और तरह-तरह के पोंगल तैयार करके उन्हें नैवेद्य करते हैं। घड़े में पकता हुआ चावल जल सहित जब घड़े के ऊपर तक आ जाता है तब सब लोग अतिहर्षोल्लास से 'पोंगल-पोंगल' 'पोंगल-पोंगल' का नारा उच्च स्वर में करते हैं। यह दृश्य आज भी गाँवों में देखते ही बनता है।

पोंगल के अगले दिन 'माट्टुप्पोंगल' के दिन गाय-बैलों को स्नान कराके उनको अलंकृत करते हैं तथा विशेष रूप से पोंगल बनाकर उन्हें खिलाते हैं। अगले दिन बछड़ों को खुश करते हैं। रिश्तेदारों, मित्रों से परस्पर मिलते हैं। बड़ों और बुजुर्गों को नमस्कार करके उनके आशीर्वाद पाते हैं। नौकर अपने मालिक से 'बकशिस' पाते हैं। कुछ जगहों पर कन्याएँ पोंगल बनाती हैं, इसीलिए इसे 'कन्नि पोंगल' भी कहते हैं।

माटुपोंगल के दिन बैलों को पकड़ने की स्पर्धा, जिसे 'मंजविरट्टु' या 'जल्लिकट्टु' कहते हैं, का आयोजन होता है। नौजवान लोग इसमें अपनी वीरता, शूरता, सूझ-बुझ, चातुर्य व पराक्रम दिखाते हैं। कन्याओं के लिए पुराने जमाने में यह 'स्वयंवर' का अवसर भी रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि मकर संक्रांति प्राचीन काल से भारत भर में मनाया जा रहा है एक विशेष सांस्कृतिक पर्व है। ऋतु परिवर्तन प्राकृतिक सौंद्रय तथा संचित नई फसल से उत्पन्न आत्म-संतोष, सबसे बढ़कर ईश्वर और उनसे अटुट जगत से प्राप्त सहयोग के लिए मनुष्य की ओर से कृतज्ञता-ज्ञापन मकर संक्रमण अथवा 'पोंगल' का बीज तत्व है।

डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन
ब्लॉक 65, लैण्ड मार्क महालक्ष्मी अपार्टमेंट
सी-303, ग्यारहवाँ एवेन्यू, अशोकनगर
चैन्नै-600083
मो. 9176092616

●

- मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा क्योंकि पुस्तकों में वह शक्ति है कि वे जहां भी होंगी, स्वर्ग बन जायेगा। **– गंगाधर तिलक**
- पुराने कपड़े पहनो तथा नई पुस्तकें खरीदो। **– थोरो**
- पुस्तकों का अध्ययन स्थायी प्रसन्नता प्रदान करता है। **– लेडी मांटेग्यू**
- जो पुस्तक सबसे अधिक सोचने को मजबूर करे वही उत्तम पुस्तक है। **– पंडित जवाहरलाल नेहरू**

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। **संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।**

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

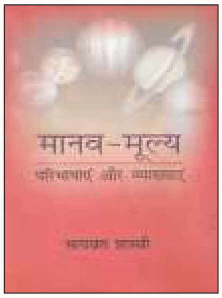

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

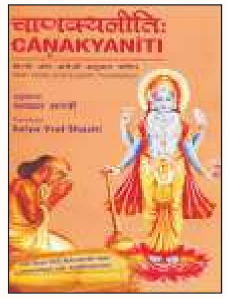

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

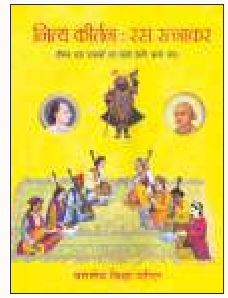

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

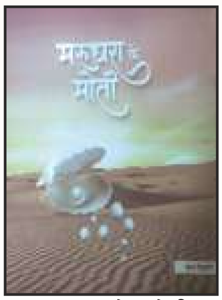

मरुधरा के मोती
पुष्पा गोस्वामी
मूल्य 2250/- पृ.सं. 140

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

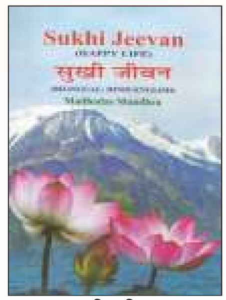

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

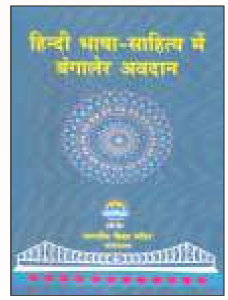

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

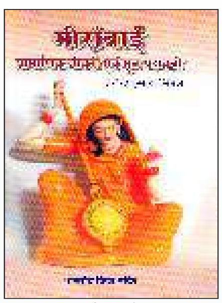

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

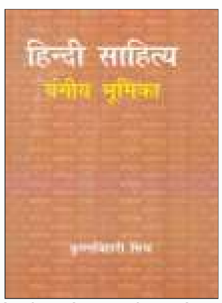

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

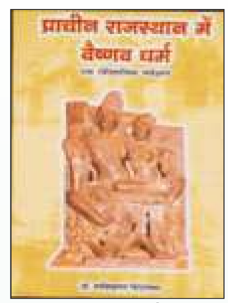

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

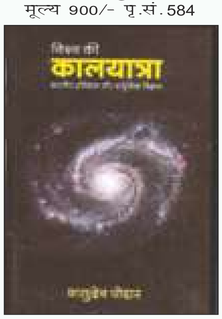

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

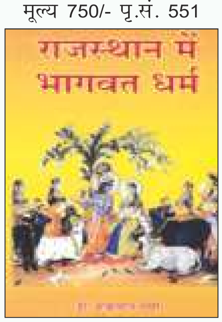

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

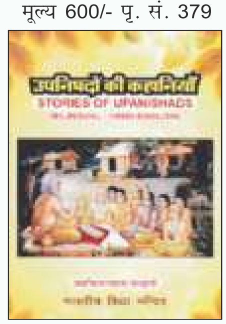

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

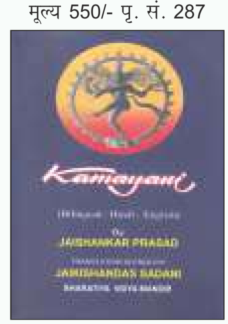

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

VAICHARIKI Bi-Monthly • ₹50/- Jan-Feb 2026 R.N.I. No. 22298/71

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

भारत की प्राचीनता 'भारत परीक्षणों के माध्यम से' सेमिनार में डॉ. रूपा भाटी, डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा, श्री के. वासुदेव राव एवं श्री वरुण अग्रवाल।

विज्ञान एवं सामाजिक सहयोगिता सेमिनार में डॉ. बाबूलाल शर्मा को पुस्तकें उपहार स्वरूप प्रदान करते हुए संसद उपाध्याक्षा डॉ. तारा दुगड़ एवं डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा।

दायें से अध्यक्ष डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा, संसद उपाध्याक्षा डॉ. तारा दुगड़, प्रमुख अतिथि डॉ. हिमाद्री शेखर मैती (पूर्व निदेशक सी. एस. आई. आर. संस्थान), श्री पूनमचन्द राठी परिलक्षित हैं।

'हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान' पुस्तक के लोकार्पण समारोह में आदरणीय श्री सिद्धेशजी को मोमेन्टो प्रदान करते हुए संस्था के अध्यक्ष डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा एवं सचिव श्री शंकरलाल सोमानी।

भारतीय अंतरिक्ष यात्रा 'ध्वनित राकेटों से लेकर चंद्रमा तक' समारोह में पंक्तिबद्ध उपस्थित हैं - डॉ. तारा दुगड़, डॉ. प्रकाश राव, डॉ. डी. पी. दुवारी, डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा, श्री कश्यप पुनुरू श्री शंकरलाल सोमानी।

युवा संगीत समारोह में उपस्थित डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा, श्रीमती कनुप्रिया लढ़ा, श्री राहुलजी लढ़ा एवं पीछे श्रीमती यमुनाजी मूंधड़ा परिलक्षित हैं।